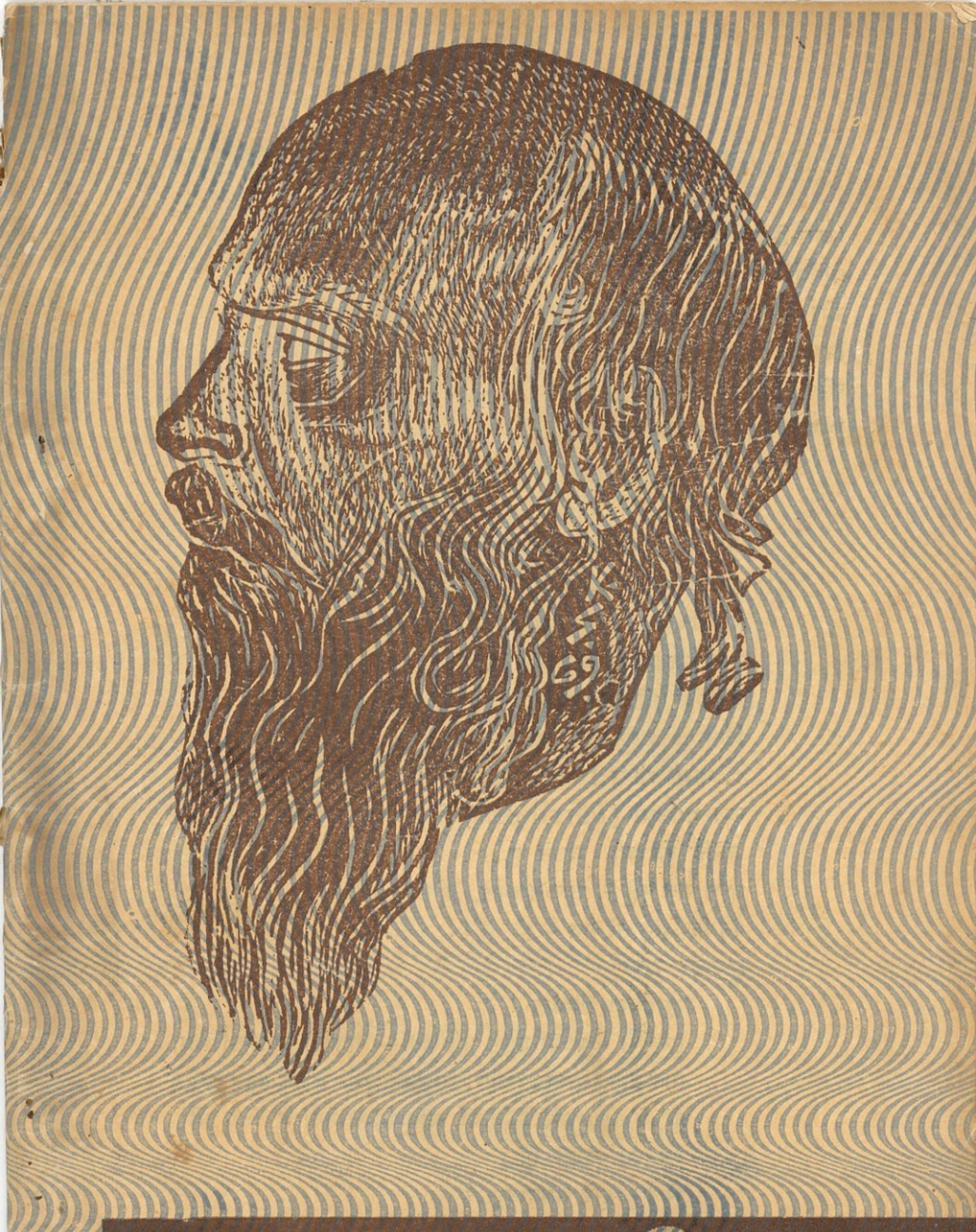

युद्धाच्या

अरविंद जोशी

अनलिखे पत्र

'जन्म-दिवस विशेषांक' में
प्रेमियों के हृदय पढ़ा ...
और फिर, युक्तांद-कार्यालय में
बिलम्ब से आई रचनाओं को (भी) देखा
और डूबा रहा देर तक ..
फिर, मन ही मन तीन पत्र लिखा;

पहला पत्र—

'हे अरविन्द !
प्रभु के विचारों को कुछ मास मत छापो,
हम प्रेमियों की लीपा-पोती और पागलपन चलने दो,
हां प्रेमियो, आवो, नाचो, गावो, धूम मचाओ...,
उनको कहने दो, जो कहते हैं,
मस्तों ने की कब परवाह
किसी के कहने-सुनने की ?
...नाचो मीरा ! गावो सूर !
उलटवासियां (Paradoxes) लिखते जावो कबीर... !
जलने दो जो जलते हैं,
आज जल रहे हैं, कल समझेंगे, शीतल होंगे !
क्योंकि, प्रभु तो सब में ही है !!

दूसरा पत्र—

'हे ईश्वर समर्पण !
तुम्हारी निकलने वाली पत्रिकायें— युक्तांद, ज्योति-शिखा,
योग-दीप, संन्यास, ओम्, तथाता, शून्य, अभेद बहुत कम हैं
हां, ये तो भक्तों के भावों, आंसुओं, आनंदों के लिए भी
कम पड़ जाती हैं,
फिर तुम्हारे भगवान...?
उनसे तो इतना बह रहा है
कि हजार पत्रिकायें भी पायेंगी नहीं संभाल
अतः तुम निकालो कम से कम लाख, दो लाख,
ताकि उनकी वाणी का शतांश तो सहेज सको !
माना कि हमें किताबों की जरूरत नहीं...
हमारे लिए तो प्रभु प्रत्यक्ष है

शेष कवर ३ पर ▶

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

जनवरी १९७३

युगान्तर

वर्ष – ४ अंक – १३ : १४

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
„ वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द

जनवरी '७३

मानसेवी --

सम्पादक : अरविन्द कुमार

: आलोक पाण्डे

: 'आकुल' राजेन्द्र

व्यवस्थापक : स्वामी धर्म सरस्वती

अनुक्रमणिका

जीसस का अज्ञात जीवन (अंग्रेजी भेंट-वार्त्ता से अनूदित)	५	अनुवाद : स्वामी चैतन्य बोधिसत्व
साधना के दो मौलिक मार्ग (एक प्रवचन)	१८	संपादन : स्वामी चैतन्य भारती
अपात्रता का बोध और यात्रा का प्रारंभ (एक प्रवचन का द्वितीयांश)	२९	संपादन : स्वामी चैतन्य भारती
कृष्ण और गीता (एक प्रवचन)	३८	संकलन : स्वामी धर्म सरस्वती

गीत : काव्य

प्रणाम तुम को	३	स्वामी अगेह भारती
नियति-चक्र	१६	स्वामी दिनेश भारती
भाव-संकेत	२८	सबसुख

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.

मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P. P.

प्रणाम तुम को

ओ भाग्यवान मौलिश्री—
रजनीश - बोधि - वृक्ष !
कल तक तुझे कोई न जानता था
कि तू क्या है ?
और आज तेरे रहस्योद्घाटन के बाद
तू स्वयं बुद्ध बन बैठा है...
हां, तेरी शीतल छांव में, जगत्
शांति खोजने आयेगा...!
ओ पावन वृक्ष !
मैं तुझे सहस्र बार प्रणाम करता हूं !!

★

ओ 'भंवरताल' की दिव्यगंधा हवाओ !
मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं
हां, तुम्हें...
जिनमें मेरे प्रभु के प्राण—श्वास - प्रश्वास—
प्रवाहित हैं !!

★

ओ धन्य भागी जबलपुर - वासियो !
मैं तुम्हारे चरणों में नमन करता हूं

हां, तुम्हारी हवाओं को प्रभु की स्मृतियां सहेजने का
गौरव मिला है !!

★

ओ बुडलैण्ड !
तुझको मैं अपने प्रणाम भेजता हूं
हां, तुझको...
जहां मेरे प्रभु वास करते हैं
और जिसकी दीवारें, छत, द्वार...सभी कुछ
उनके चलने - फिरने, उठने - बैठने, हंसने - बोलने
व सभी कुछ की साक्षी हैं !

★

ओ 'आनंद शिला', 'विश्वनीड़', 'समर्पण', 'प्रेमनीड़',
'आनन्द नीड़', 'अमृत धाम' एवं 'आलोक' नामक
नव-संन्यास के नव-निर्मित आश्रमो !
व भविष्य में निर्मित होने वाले अन्यान्य आश्रमो !
मैं तुम सब को प्रणाम करता हूं
जहां प्रभु के प्रेमी वास करते हैं
व भविष्य में वास करेंगे !!

★

ओ ऋषियों - अवतारों की पवित्र भूमि, भारत !
तूने बड़े जटिल समय में भी
अपनी परम्परा कायम रखी
मैं तेरे चरण पखारता हूं !
मेरे भाव स्वीकार कर !!

★

ओ मां सरस्वती !
पिता श्री बाबूलाल !
तुमने मनुष्यता को ऐसा 'हीरा' दिया
कि किस विधि तुम्हारा वंदन करूं !!

★

ओ सूरज - चांद - सितारो !
ओ दृश्य - अदृश्य जगत् !
ओ समस्त अस्तित्व !
मैं तेरे समक्ष नतमस्तक हूं !!
मुझे अंगीकार कर !!!

● *स्वामी अगेह भारती*, जबलपुर

भगवान् श्री रजनीश के साथ जर्मनी के एक पत्रकार डीटर लुडविग की अंग्रेजी में भेंट-वार्ता अप्रैल ६, १९७२ बम्बई, का प्रथम अर्धांश नव-संन्यास अंन्तर्राष्ट्रीय की द्वै-मासिक अंग्रेजी पत्रिका 'संन्यास' के अंक ४ से साभार उद्धृत ।

प्रश्नकर्त्ता : क्या जीसस पूर्णतः ज्ञान को उपलब्ध थे ?

श्री रजनीश : हां, वे पूर्णतः ज्ञान को उपलब्ध थे । परन्तु वे ऐसे लोगों के बीच रह रहे थे, जो कि पूरी तरह ज्ञान से अनभिज्ञ थे । इसलिए उन्हें ऐसी भाषा बोलनी पड़ी जिससे कि लगे कि वे ज्ञानी नहीं थे । उन्हें ऐसी भाषा बोलनी पड़ी, क्योंकि उसके सिवाय कोई दूसरा उपाय न था ।

जब बुद्ध बोलते हैं, तब बिलकुल दूसरी ही भाषा का उपयोग करते हैं । ऐसा नहीं कह सकते कि "मैं परमात्मा का बेटा हूं ।" वे ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि बेटा, बाप आदि ये सब बेकार बातें हैं । परन्तु जीसस के लिए दूसरी किसी भी भाषा का उपयोग करना असम्भव है । केवल वही समझा जा सकता है, जो कि वे बोल रहे हैं । इसलिए भाषाएं भिन्न हैं । बुद्ध बिलकुल दूसरी ही भाषा बोलते हैं क्योंकि वे एक बिलकुल दूसरी तरह के लोगों से बोल रहे हैं । और जीसस एक दूसरी तरह के लोगों से बोल रहे हैं ।

वस्तुतः, जीसस बहुत तरह से बुद्ध से सम्बन्धित हैं । ईसाइयत को यह पता नहीं है कि जीसस लगातार तीस साल तक कहां रहे । वे अपने तीसवें साल में प्रकट होते हैं, और अपने तैंतीसवें वर्ष में क्रॉस पर लटका दिए जाते हैं । ऐसा बाइबिल में उल्लेख है । अतः केवल तीन वर्ष का हिसाब है । एक या दो बातें और ज्ञात हैं ।

एक, जब वे पैदा होते हैं। कहानी पता है। और दूसरा, जबकि वे सात वर्ष के होते हैं और वे एक बड़े मंदिर में एक त्यौहार के दिन आते हैं। केवल ये दो घटनाएं पता हैं, और फिर तीन वर्ष उनकी मन्त्रणा के पता हैं। बाकी समय अज्ञात है।

परन्तु भारत के पास कई परम्परायें इस सम्बन्ध में हैं। वे काश्मीर में एक बौद्ध मॉनेस्ट्री (मठ) में रहे—उन सब सालों में जिनका कोई लेखा-जोखा नहीं है। और इन सबके रिकॉर्ड हैं। काश्मीर में कहानियां प्रचलित हैं कि वे वहां थे। और वे इन सारे सालों में बौद्ध भिक्षु थे, ध्यान-साधना में लीन। फिर वे जेरूसेलम में प्रकट होते हैं जबकि वे तीस वर्ष के होते हैं। फिर उन्हें क्रॉस पर चढ़ा दिया जाता है और फिर कहानी है कि पुनर्जीवित होते हैं। परन्तु वे फिर कहां अदृश्य हो जाते हैं पुनर्जीवित होने के बाद ? ईसाइयत के पास इस बारे में कुछ कहने के लिए नहीं है। "कहां चले गये वे ?" "कब मरे वे ?"

एक फ्रांसीसी लेखक अपनी एक पुस्तक—'दि सरपेन्ट ऑफ पेरेडाइज' में कहता है—"कोई नहीं जानता कि उन्होंने क्या किया और कहां रहे जब तक कि वे तीस वर्ष के नहीं हुए, याने उस वर्ष तक जबकि उन्होंने अपने उपदेश देने शुरू नहीं किए। एक कथा है जो कहती है कि वे काश्मीर में थे जो कि काश्मीर का मूल नाम है। 'का' का अर्थ है 'वैसा ही' याने समान और 'शीर' का मतलब है 'सीरिया'।

यह भी उल्लेख किया गया है कि रूसी यात्री निकोलस नेटोविच जो कि करीब १८८७ के आस-पास भारत आया था, लद्दाख गया जहां कि वह बीमार पड़ गया और प्रसिद्ध हेंमिस गुफा में रहा। गुफा में अपने निवास काल में, वह बौद्धों के कितने ही बड़े-बड़े ग्रंथों को पढ़ गया जिनसे कि उसने जीसस की दुनिया के इस हिस्से की यात्रा के बारे में जाना। उसने जीसस का बहुत अधिक जिक्र, उसकी शिक्षाओं व उसकी लद्दाख यात्राओं आदि के बारे में बौद्ध ग्रन्थों में पाया। बाद में उसने एक पुस्तक प्रकाशित की, 'लाइफ ऑफ सेन्ट जीसस' जिसमें कि उसने वह सब जो कुछ भी जीसस की लद्दाख यात्रा व पूर्व के दूसरे देशों की यात्रा के बारे में जाना था, उल्लेख किया।

यह उल्लेख किया गया है कि लद्दाख से जीसस, ऊंचे पर्वतों के दर्रों में से गुजर कर, बर्फीले रास्तों को पार करते हुए काश्मीर में पहलगाम पहुंच गए। वे इस पहलगाम (गड़रियों का गांव) में लम्बे समय तक अपनी भेड़ बकरियों

की देख-भाल करते हुए रहे। यहां जीसस को इजराइल की कुछ खोई हुई जातियों के चिह्न मिले।

यह गांव, ऐसा उल्लेख मिलता है कि पहलगाम के नाम से, जीसस यहां रहे, उसके बाद ही पुकारा गया। 'पहल' का काश्मीरी भाषा में अर्थ होता है—'गडरिया' और गाम का मतलब होता है 'गांव'। बाद में, श्रीनगर जाते हुए रास्ते में, जीसस विश्राम के लिए रुके और इसमुक्कम (Esmuquam) स्थान पर उन्होंने उपदेश दिए और यह गांव इसमुक्कम भी उनके पीछे ही "जीसस के विश्राम की जगह"— इस नाम से पुकारा जाने लगा।

जबकि जीसस अभी तक क्रास पर ही थे, एक सिपाही ने भाले से उनके शरीर को छेद दिया और उसमें से खून व पानी फूट पड़ा। यह घटना सेन्ट जॉन की गॉस्पेल, अध्याय १९, पद्य चौंतीस में रेकार्ड की गई है—"एक सिपाही ने उसके एक तरफ भाले से छेदा और एकदम रक्त व पानी फूट पड़ा।" यह इस बात को सिद्ध करती है कि जीसस क्रास पर जीवित थे, क्योंकि मृत शरीर में से खून नहीं बहता।

जीसस को फिर से मरना पड़ेगा : या तो क्रॉस पर काम पूरा हो गया और वे मर गये अथवा पूरी क्रिश्चियॅनिटी (ईसाइयत) मरती है, क्योंकि सारी ईसाइयत ही रिसरेक्शन पर, पुनर्जीवित होने की घटना पर निर्भर करती है। वे पुनर्जीवित होते हैं और वही चमत्कार होता है। वह होना ही चाहिए। यदि वह नहीं होता तो यहूदी कभी भी विश्वास नहीं करेंगे कि वे प्रोफेट थे क्योंकि ऐसी भविष्यवाणी की गई थी कि आनेवाला क्राइस्ट क्रॉस पर लटकाया जायेगा और फिर से पुनर्जीवित होगा।

इसलिए वे रुके रहे। उन्हें देखा गया। उनका शरीर, गुफा से तीन दिन के बाद जहां कि रखा गया था, गायब हो गया। फिर उनको देखा गया, कम से कम आठ लोगों ने उन्हें उनके नए शरीर में देखा। तब वे फिर अदृश्य हो जाते हैं और ईसाइयत के पास कोई रेकॉर्ड नहीं है कि फिर उनको मृत्यु कब घटित हुई।

वे फिर से काश्मीर आ गये और वहां वे ११२ वर्ष की अवस्था तक रहे। तब वे काश्मीर में ही मृत्यु को प्राप्त हुए। और वहां एक नगर है, ठीक वहां, जहां कि यह घटना हुई।

प्रश्नकर्त्ता : क्या वे काश्मीर में किसी दूसरे नाम से रहे हैं ?

श्री रजनीश : नहीं, किसी दूसरे नाम से नहीं वस्तुतः, क्योंकि जब आप उन्हें जीसस के नाम से पुकारते हैं, तब सारा अरब देश ईसस, ईसू के नाम से पुकारता है। और काश्मीर में वे यूसा-आसफ के नाम से जाने जाते थे। उनकी कब्र, यूसा-आसफ की कब्र के नाम से जानी जाती है। वे बहुत दूर से आये और वहां रहे, और वहां यह भी इंगित किया गया है कि वे १९०० वर्ष पूर्व आए।

"सरपेन्ट ऑफ पेराडाइज" का लेखक भी, जो कि उस कब्र को देखने गया, कहता है : शाम का समय था जब मैं उस कब्र पर पहुंचा और सन्ध्या की उस रोशनी में आदमी और बच्चों के चेहरे जो भी बाजार में दिखलाई पड़े, बड़े पवित्र मालूम होते थे। वे पुराने जमाने के लोग लगते थे, संभवतः वे इजराइल की खो गई किसी जाति या कबीले के लोगों से जुड़े हुए मालूम पड़ते थे जो कि हिन्दुस्थान चले गये थे। अपने जूते उतार कर मैं भीतर घुसा और मैंने एक पुरानी कब्र देखी जो कि एक जरा-जीर्ण दीवार से घिरी हुई थी उसकी रक्षा के लिए, जबकि दूसरी तरफ पत्थर का काटा हुआ एक पैर का निशान था। उसे यूसा-आसफ का पदचिन्ह बतलाते हैं और किंवदन्ती के अनुसार यूसा-आसफ जीसस था। दीवार पर एक शिला-लेख लटका हुआ है और उसके नीचे अंग्रेजी में (अनुवाद शारदा से) लिखा है—यूसा-आसफ (खानयार, श्रीनगर)।

वह स्थान, कब्र, सब यहूदी ढंग के हैं। भारत में कोई भी कब्र इस तरह की नहीं है। उसका ढांचा यहूदी है और उस पर जो भाषा लिखी है वह हिब्रू है। जीसस पूर्णतः एनलाइटन्ड, ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति थे। यह पुनर्जीवित होने की घटना पुराने कट्टर ईसाइयों की समझ में नहीं आती, परन्तु योग के लिए ऐसा नहीं है। योग का विश्वास है और इस बात के बहुत प्रमाण हैं कि कोई आदमी पूरी तरह से मर सकता है, बिना मरे भी। हृदय रुक जाता है, नाड़ी ठहर जाती है, सांस रुक जाती है। योग के पास इसके लिए विधियां हैं। जैसा कि हम जानते हैं, जीसस ने एक गहरी योग की प्रक्रिया का उपयोग किया जबकि उन्हें क्रास पर रखा गया। क्योंकि यदि कोई पूर्णतः मर जाय तो फिर उसके पुनर्जीवित होने की कोई सम्भावना नहीं है।

जबकि घातकों ने देखा कि अब वह मर गया, उन्होंने शरीर को नीचे उतार दिया और उसे उन्होंने अनुयायियों को दे दिया। तब शरीर को परम्परा के अनुसार तीन दिन गुफा में रख दिया गया। और तीसरे दिन गुफा खाली पाई गई। वे अदृश्य हो गये।

ईसाइयों का एक पंथ—ईसीन (एक अलग प्रथा) मानता है। वह पंथ कहता है कि ईसीन अनुयायियों ने जीसस को ठीक होने में सहायता की क्योंकि उनको घाव हो रहे थे, जो भरने थे। और जब उन्हें फिर से देखा गया तो अनुयायी बिलकुल विश्वास न कर सके कि वे जीसस थे क्योंकि वे मर चुके थे और उन्हें क्रास पर लटका दिया गया था। तो केवल घावों के चिह्न ही दिखला सकते थे कि वे वही आदमी थे। बाइबिल में भी यह रिकॉर्ड किया गया है कि उन्होंने अपने भर गये घावों को बतलाया। वे घाव ईसीन के अनुयायियों द्वारा भरे गये।

तीन दिन में घावों का भरना हुआ, और जब वे भर गये तो वे गायब हो गये। उन्हें उस देश से चला जाना पड़ा क्योंकि यदि वे वहां रहते तो उन्हें फिर से मार दिया जाता।

क्रास पर से उतारे जाने के बाद उन्हें उनके शिष्यों द्वारा एक महीन मसलिन कपड़े में एक खास मलहम लगाकर लपेट दिया गया (जो कि आज भी जीसस के मरहम के नाम से जानी जाती है) और वे फिर से स्वस्थ हो गये। उनके दो अनुयायी, जोसफ और निकोडिमस ने उनके शरीर को परंपरा अनुसार एक गुफा में ले जाकर रख दिया और एक बड़ा पत्थर उसके मुंह पर लगा दिया। ताकि लोगों को उनकी मृत्यु के प्रति सन्तोष रहे।

यह रिकॉर्ड किया गया है कि जीसस तीन दिन तक गुफा में रहे और स्वस्थ होते गये। तीसरे दिन बहुत भयंकर भूकम्प आया और पीछे-पीछे तूफान। जो सिपाही गुफा के द्वार पर रक्षा के लिए थे, वे भाग खड़े हुए। वह बड़ा पत्थर गुफा के मुंह से लुढ़क गया। जीसस वहां नहीं थे। जीसस का गुफा से गायब हो जाने की घटना ने जीसस के पुनर्जीवित होने व उनके स्वर्ग के चले जाने के मत को बढ़ावा दिया।

इस क्रास पर लटकाये जाने के बाद जीसस में भारी आध्यात्मिक परिवर्तन आया। फिर वे पूर्ण मौन में जिये। तब फिर वे प्रोफेट, मसीहा नहीं रहे, फिर वे मंत्रणा देने वाले या उपदेश करने वाले नहीं रहे, उसके बाद वे मौन रहे। इसलिए इस सम्बन्ध में ज्यादा पता नहीं है। फिर वे भारत में रहे, और भारत में एक धारणा प्रचलित है (बाइबिल में भी) कि यहूदियों का एक जत्था गायब हो गया। और बहुत से संदेशवाहक भेजे गये पता लगाने के लिए कि वह कहां गया। जब मोजेज जेरूसेलम पहुंचे तो भी एक जत्था गायब हो

चुका था। वास्तव में काश्मीरी लोग अपने चेहरे से, अपने खून से, अपने सारे हाव-भाव से यहूदी लगते हैं।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासकार बरनियर ने, जो कि औरंगजेब के काल में भारत में आया, लिखा है—"राज्य में घुसने के बाद, पिरान्जले के पहाड़ों को पार करने के बाद सीमावर्ती गांवों के लोग मुझे यहूदियों से मिलते जुलते लगे।"

जब कभी आप काश्मीर में घूमते हैं, तो आपको ऐसा लगता है कि आप यहूदियों के देश में घूम रहे हैं। इसलिए ऐसा सोचा जाता है कि जीसस काश्मीर आये, क्योंकि वह यहूदियों का भारत में प्रदेश था। एक यहूदियों का जत्था वहां था। बहुत-सी कहानियां काश्मीर में प्रचलित हैं, किन्तु किसी को वहां जाकर उन्हें खोजना पड़ेगा।

जीसस पहलगाम में लम्बे समय तक रहे, और उनके कारण तो उस गांव का नाम सार्थक हुआ। वे एक गड़रिये की तरह रहे। प्रतीकात्मक रूप से वे गड़रिये की तरह जाने गए, इसलिए पहलगाम का अर्थ है गड़रियों का गांव, और पहलगाम में बहुत से अवशेष हैं और कुछ कहानियां हैं युसा-आसफ के बारे में जो १९०० वर्ष पूर्व यहां आया, और रहा और वह इस गांव की नींव डालने वाला था। अतः यदि आप काश्मीर जायें तो बहुत से स्थान मिलेंगे उनकी यादगारों के साथ, स्मृतियों के साथ। केवल नाम यूसा-आसफ है। ईसस से, ईसू से, कठिन नहीं है यूसा-आसफ तक जाना। लगातार ७० वर्ष वे भारत में थे, सत्तर साल तक—मौन, अज्ञात, छिपे हुए, एक ग्रुप के साथ। सचमुच एक ग्रुप उनके साथ था।

परन्तु ईसाइयत जीसस के बारे में बहुत-सी बातों से अनभिज्ञ है। वह बहुत अपरिचित है। उनकी पूरी जिंदगी का कोई पता नहीं है। उन्होंने क्या अभ्यास किया, कैसे वे ध्यान करते थे—सब अज्ञात है। और जितने भी ईसाई अपोस्टल्स हुए हैं, संत हुए हैं, वे अनपढ़ लोग थे। उन्हें कभी ज्यादा कुछ पता नहीं था। एक मछुआ था, दूसरा बढ़ई था, या ऐसा ही कुछ। सबके सब बारह अपोस्टल्स अनपढ़ थे।

प्रश्नकर्त्ता : परन्तु पॉल एक डाक्टर था।

श्री रजनीश : हां, किन्तु उस समय के यहूदियों के बीच रहने वाले डाक्टर। और वे नहीं जानते थे कि जीसस अपने मौन काल में क्या कर रहे थे। उन्होंने इतना ही रिकार्ड किया है कि वे पहाड़ों में चले गये थे और वे

३० वर्षों तक मौन थे। और फिर वे लौटे और उन्होंने उपदेश देना प्रारम्भ किया परन्तु वे यहां क्या कर रहे थे ? कुछ भी पता नहीं है—कुछ भी नहीं। और फिर वे ऐसे कामों में व्यस्त हो गए जो कि सामाजिक और राजनैतिक अधिक थे, बजाय धार्मिक होने के। और ऐसा होना ही था क्योंकि उनके चारों ओर जो लोग थे वे पूरे अदार्शनिक थे।

जो कुछ भी जीसस ने कहा, वह समझा नहीं गया या गलत समझा गया। उन्होंने कहा : मैं यहूदियों का सम्राट हूं। उनका किसी संसार के राज्य से मतलब नहीं था ! परन्तु इसको गलत अर्थों में समझा गया। और मैं सोचता हूं कि उनके दुश्मनों के द्वारा ही नहीं वरन् उनके अनुयायियों व अपोस्टल्स के द्वारा भी गलत समझा गया, क्योंकि वे भी किसी राज्य के बारे में समझने लगे थे, और वे अनपढ़ लोग थे। वे भी नहीं समझ सके कि जो कुछ वे कह रहे हैं, वह किसी और दुनिया की बात है अथवा प्रतीकात्मक है। इसलिए वे भी सोचने लगे थे कि जीसस आगे पीछे सम्राट होने वाले हैं। और उसी ने सारे उपद्रवों को पैदा किया। वास्तव में जीसस को किसी और देश में क्रास पर नहीं लटकाया जा सकता था। किन्तु यहूदियों के लिए यह एक समस्या थी।

वास्तव में यहूदी जाति सर्वाधिक भौतिकवादी जातियों में से एक रही है और आज भी है। वस्तुतः परलोक उनके लिए अर्थहीन है। वे केवल 'इस' लोक से सम्बन्धित हैं। यहां तक कि वे यदि दूसरे लोक की बात भी करते हैं, तो भी 'इस' लोक का फैलाव है। वह उनके लिए 'इस' लोक से अतिक्रमण नहीं, परन्तु एक सातत्य है। उनका चिन्तन एक भिन्न प्रकार का है। इसलिए जहां तक भौतिक विज्ञान का सम्बन्ध है यहूदियों का उसमें सर्वाधिक अनुदान है। और एक आदमी जो कि इस सारे संसार को भौतिक धारणा में परिवर्तित करने के लिए जिम्मेवार है वह है कार्ल मार्क्स। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। कार्ल मार्क्स, फ्रायड, व आइन्सटीन—ये तीन यहूदी बीसवीं शताब्दी के निर्माणकर्त्ता हैं—तीन यहूदी जो कि सारे संसार का निर्माण कर रहे हैं। क्यों ?

आज इस दुनिया में एक भी आदमी उपस्थित नहीं जो कि यहूदी धारणा का अंग न हो। जैसे कि वे दिखलाई पड़ते हैं, यहूदी पूरी तरह पृथ्वी से बंधे, जमीन में जड़ जमाये लोग हैं। और जीसस बुद्ध की तरह से बोलने लगे। उनमें कोई मिलन नहीं था, कोई सम्भाषण नहीं था। वे निरंतर गलत समझे गये।

पाइलेट जीसस के प्रति अधिक समझदारी दिखलाता है बजाय उनकी स्वयं की जाति के। वह निरंतर महसूस करता है कि एक निर्दोष मनुष्य को अकारण ही मारा जा रहा है, और उसने अपनी तरफ से भरसक प्रयत्न किया कि उसे नहीं मारा जाय। पाइलेट एक अकेला आदमी ऐसा था जो कि महसूस कर रहा था कि यह बिलकुल मूढ़तापूर्ण है, परन्तु फिर कुछ राजनैतिक कारण थे। और जब जीसस को लटकाया जा रहा था, उस अन्तिम क्षण में भी उसने कुछ प्रश्न पूछे। पाइलेट ने पूछा : सत्य क्या है ?

जीसस मौन रहे। वह एक बौद्ध उत्तर था क्योंकि केवल बुद्ध ही मौन रहे सत्य के बारे में। कोई दूसरा नहीं। कुछ न कुछ हमेशा ही कहा गया। केवल बुद्ध चुप रहे—पूर्ण मौन। जीसस भी मौन रह गये। यहूदियों ने इससे यह समझा कि वे नहीं जानते। सचमुच, यदि जानते हैं तो उन्हें कहना चाहिए।

परन्तु मैंने ऐसा अनुभव सदैव किया है कि पाइलेट समझ गया था। वह एक रोमन था, वह समझ सकता था। फिर पाइलेट वहां से गायब हो जाता है। वह सिर्फ गायब हो जाता है। उसने सारा मामला पादरियों को सौंप दिया। वह उसमें सम्मिलित नहीं होना चाहता। यह सारा मामला दो भाषाओं में होता है—भिन्न भाषाओं में। जीसस दूसरे लोक की भाषा बोलते हैं, यद्यपि इसी दुनिया की शब्दावली में और यहूदी सारी बात को शाब्दिक अर्थों में समझते हैं।

भारत में ऐसा घटित नहीं होता, जहां कि पेंराबेल्स (दृष्टान्तों) व प्रतीकों की लम्बी परम्परा है। भारत में उल्टी गैर-समझ की सम्भावना है : कोई यदि इस दुनिया की बात भी करता हो तो उस दुनिया की समझी जा सकती है। परम्परा इतनी लम्बी है। और ऐसे कवि हैं जो निरंतर इस संसार के प्रेम लगाव व सेक्स की बात करते रहते हैं—परन्तु उनके ऐसे अनुयायी हैं जो उनके प्रतीकों की—'उस' लोक के प्रतीकों के रूप में व्याख्या करते रहते हैं। यदि आप सुरा और सुन्दरी की बात भी करें तो वे सोचेंगे सुरा का अर्थ है कोई आनन्द। अतः ऐसा होता है। यह एक लम्बी परम्परा है।

यहूदी बहुत ही शाब्दिक अर्थ लेने वाले लोग हैं। और बड़े आश्चर्य की बात है कि वे वैसे आज भी हैं। वे अजीब लोग हैं जिनका कि दुनिया के प्रति बिलकुल भिन्न ही दृष्टिकोण है और इसलिए वे कहीं भी चैन से नहीं रह सके और वे रह नहीं सकते। क्योंकि उनके पास एक भिन्न, एक विचित्र ही मन है। एक यहूदी के भीतर प्रवेश कर सकना सदैव कठिन है। उसके

चारों ओर एक घेरा होता है। और जितने ज्यादा यहूदी बेघर के होते हैं, उतने ही अधिक वे अपनी सुरक्षा करते होते हैं।

परन्तु मूल बात यह है कि वे पदार्थ की भाषा में सोचते हैं। 'ईश्वर भी पदार्थ के ही सातत्य में है।' इसीलिए जीसस को समझना असम्भव हो गया क्योंकि यहूदी कहते हैं कि 'जब तुम्हें कोई चोट पहुंचाये तो तुम दुगनी ताकत से उसे चोट मारो।' इसी तरह पदार्थ व्यवहार करता है। प्रतिक्रिया करो। 'यदि किसी ने तुम्हारी एक आंख निकाल ली है तो तुम उसकी दोनों आंख निकाल लो।' और जीसस बिलकुल विपरीत बात कहने लगे : 'यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर चपत लगाये तो तुम अपना दूसरा गाल उसके सामने कर देना। यह बिलकुल बौद्धों की बात थी।

वास्तव में, आप समझ ही नहीं सकते कि कैसे एक यहूदी अचानक इस तरह बोलने लगा। पीछे कोई परम्परा, कोई शृंखला अतीत की नहीं थी। और तब तक कुछ भी नहीं होता है जब तक कि कोई दुर्घटना नहीं होती। इसलिए जीसस एक यहूदी की तरह समझ में नहीं आते। वे अचानक वहां होते हैं, परन्तु अतीत के साथ उनकी कोई शृंखला नहीं है। यहूदियों के अतीत के इतिहास से उनको नहीं जोड़ा जा सकता। उनका उससे कोई मिलन नहीं है। यहूदियों के ईश्वर के लिए जीसस का प्रेम, उनकी करुणा सब बेवकूफी की बातें है। आप उससे अधिक ईर्ष्यालु ईश्वर का ख्याल नहीं कर सकते। आप उससे अधिक क्रोधी ईश्वर के लिये नहीं सोच सकते। आप उससे अधिक हिंसक ईश्वर की कल्पना नहीं कर सकते। वह क्षण भर में किसी भी शहर को नष्ट कर सकता है यदि किसी ने उसकी आज्ञा नहीं मानी। अगर एक व्यक्ति ने भी आज्ञा नहीं मानी तो सारा शहर उजाड़ दिया जायेगा, जला दिया जायेगा। और तब जीसस अचानक ऊपर उठ आते हैं और कहते हैं : परमात्मा प्रेम है। यह समझ में नहीं आ सकता जब तक कि कुछ और परम्परा में प्रवेश न हो गया हो।

जब बुद्ध करूणा की बात करते हैं तो यह न समझ में आने वाली बात नहीं है। सारा भारतवर्ष, कई-कई शताब्दियों से ऐसी बातें करता रहा है। बुद्ध एक परम्परा के हिस्से हैं, परन्तु जीसस यहूदी परम्परा के हिस्से बिलकुल भी नहीं हैं और इसीलिए उन्हें मार डाला गया और क्रॉस पर लटका दिया गया।

किसी बुद्ध को भारत में कभी नहीं मारा गया, क्योंकि कितना ही विद्रोही कोई क्यों न हो वह परम्परा से जुड़ा है। कितना ही विद्रोही कोई क्यों न हो, वह गहरी प्रथाओं को और दृढ़ करता हुआ लगता है और लोग यह अनुभव करने लगते हैं कि वह समाज से अधिक भारतीय है क्योंकि वह देश की मूल प्रथाओं को प्रमाणित करता है। परन्तु जेरुसेलम में एक जीसस पूरी तरह एक विदेशी लगते हैं जो कि ऐसे शब्दों, भाषा, प्रतीकों आदि का उपयोग करते हैं जो कि वहां की जाति के लिए पूर्णतः अज्ञात हैं। तब वे अनिवार्यतया क्रॉस पर लटकाये जाने वाले हैं, वह स्वाभाविक था। अतः जैसा मैं जीसस को देखता हूं, वे गहरे ध्यान में डूबे, गहरे बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति हैं परन्तु एक ऐसी जाति के साथ काम कर रहे हैं जो कि राजनैतिक है, जो कि वास्तव में धार्मिक नहीं है और न ही दार्शनिक है।

यहूदियों ने जगत को कोई दार्शनिक नहीं दिया। उन्होंने बड़े वैज्ञानिक दिये हैं परन्तु दार्शनिक नहीं दिए। उस कौम का दिमाग ही बिलकुल भिन्न है, वह बिलकुल अलग ढंग से काम करता है। जीसस मात्र एक 'आउट साइडर', एक विदेशी, एक अजनबी थे और अचानक उन्होंने सारी गड़बड़ शुरू कर दी। उन्हें चुप करना ही था।

तब फिर वे बच निकले, और फिर उन्होंने कभी प्रयास नहीं किया। तब वे मौन में रहे एक ग्रुप के साथ—चुपचाप कार्य करते हुए, गुह्य प्रणाली से। और मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि अभी भी कोई गुप्त प्रथा काम करती है। यदि कोई ईसाइयत को भूल जाय और पीछे लौटकर जीसस को खोजने जाय, बिना ईसाइयत के, तो वह समृद्ध हो सकता है। परन्तु अब ईसाइयत बाधा बन गई है। जब कभी आप जीसस के बारे में सोचते हैं तो ईसाइयों की व्याख्या ही एक मात्र व्याख्या बन जाती है।

जब बीस साल पहले मृत सागर के पास से 'दि डेड सी स्क्रॉल्स' पाए गए, तो उनको लेकर एक तूफान आ गया, क्योंकि वे स्क्रॉल्स अधिक प्रमाणित हैं। वे मूलतः ईसीनीज के पास थे परन्तु क्रिस्चियन ईसाइयत कोई समझौता नहीं कर सकती। ईसाइ एक दूसरी कहानी कहते हैं—यहूदियों की एक बिलकुल भिन्न कहानी। यहां तक कि कुरान के पास भी अलग ही कहानी है और ऐसा लगता है कि मोहम्मद बहुत से यहूदी रहस्यवादियों से सम्पर्क बनाये हुए थे।

ऐसा सदैव ही होता है, कि जब मैं कोई बात कह रहा हूं तो मैं, मेरे इर्द-गिर्द दो प्रकार के लोगों को पैदा करूंगा। एक होंगे बाह्य आयामी (Exoteric), वे संगठन करेंगे, वे बहुत सी बातें पदार्थ, समाज, संसार के तल पर करेंगे जो कि बाहर है। वास्तव में वे जो कुछ मैं कह रहा हूं उसको सम्हाल कर रखने में मदद करेंगे। दूसरा जो ग्रुप होगा वह आन्तरिक जगत से ज्यादा सम्बन्धित होगा। और कभी न कभी आगे-पीछे, वे अवश्य द्वन्द में आयेंगे क्योंकि तब उनका और अलग-अलग हो जायेगा।

वह जो आन्तरिक है, गुह्य (Esoteric) चित्त है, वह ऐसी बात से सम्बन्धित है जो कि बिलकुल भिन्न है। और अन्ततः वह जो बाह्य ग्रुप है वह जीत जाएगा क्योंकि वह एक समुदाय में काम कर सकता है। ये एसोटेरिक लोग ग्रुप में काम नहीं कर सकते। वे व्यक्तिगत ढंग से ही काम करते चले जाते हैं। जब एक व्यक्ति खो जाता है तो कुछ खो जाता है। अतः प्रत्येक के साथ ऐसा होता है, और आखिर में बाहरी ग्रुप अधिक प्रभावशाली हो जाता है। वह एक चर्च, एक पंथ बन जाता है जिसमें सब कुछ स्थापित होता है। वह एक संस्था बन जाती है। और जो पहली बात एक संस्था को करनी होती है वह है अपने एसोटेरिक हिस्से की हत्या, क्योंकि वह सदैव ही एक विघ्न है—सदैव एक उपद्रव।

अतः अपधर्म के नाम पर ईसाइयत जो कुछ भी गुह्य है उसे नष्ट करती रही है। और अब पोप जीसस के बिलकुल विपरीत चरम सीमा पर है। यह दो घटनाओं की अन्तिम अवस्था है—आखिरी चरम सीमा जहां तक कि वे बढ़ सकती हैं। वह उस पादरी की तरह से है जिसने की जीसस फिर लौटकर आते हैं तो इस बार उन्हें रोम में क्रॉस पर लटकाया जायेगा—वेटिकन के द्वारा। यह बाह्य संगठन, संस्था वाला हिस्सा है।

परन्तु ये स्वाभाविक समस्यायें हैं। वे होती हैं। आप कुछ नहीं कर सकते। परन्तु जीसस एक परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति थे जैसे कि बुद्ध महावीर, कृष्ण आदि थे।

अनुवाद :

स्वामी चैतन्य बोधिसत्व

नियति-चक्र :

संभवामि युगे-युगे

लुटता रहा 'धर्म' का कारवां
होता रहा 'भीड़' का शोषण
खूब हुआ संस्कृति का बिखराव
पहुंची कई सभ्यताएँ
चांद की जमीन पर
और...नियति का चक्र चलता रहा !

★

धर्म गुरुओं के प्रपंचों
और धार्मिक कर्म-काण्डों की चक्की में
पिसता रहा इंसान—
तब आवाज हुई .. 'त्राहि-माम्
त्राहि-माम्'
तब तुम बनकर आये 'राम'
और रावण का संहार किया
धर्म की पुर्नस्थापना की
कभी 'कृष्ण' बनकर
द्रोपदी का बढ़ाया चीर
कंस का भी किया नाश
दिग्भ्रांत और दुखी मानवता का—
किया दिशा निर्देशन—
मुक्त किया मनुष्य को तुमने
उसकी स्व-निर्मित कैद से
फिर ... ...
नियति का चक्र चलता रहा !

★

"संभवामि युगे-युगे" की
तुम्हारी घोषणा हमें याद थी
फिर तुम आये
कभी 'महावीर' कभी 'बुद्ध' बनकर
किया प्राणियों को त्रास मुक्त
जो थे अब तक संत्रस्त !

★

फिर दिखाया तुमने—
हारी और थकी हुई मनुष्यता को
अहिंसा और सत्य का सुनहरा महल
पर, हाय !
प्रकृति का देखो तो क्रूर मजाक
मानव ने नहीं किया तुम्हारा सम्मान
किये तुम पर खूब अत्याचार
और तुम बांटते ही रहे, करुणा-प्यार!
एक दिन, अभागी मनुष्यता का
तुमने फिर साथ छोड़ दिया
और ... ...
नियति का चक्र चलता रहा !

★

ढाई हजार साल बाद ...
कई चेतनायें एक साथ मुक्ति को
विकल हो गईं
फिर किसी 'कृष्ण' की
फिर किसी 'राम' की
प्रतीक्षा चलती रही
धर्म के विकास के लिए
अधर्म के नाश के लिए
तब ... ...
बीसवीं सदी के चौथे दशक
के प्रथम चरण में (सन् १९३१)
'शक्कर' की पावन गोद में—
(भगवान की जन्म-भूमि गाडरवारा
से बहने वाली नदी)
हुआ तुम्हारा आगमन
और उस दिन ... ...
हंसा था मुक्त आकाश
फूल भी मुस्कराये थे
नदियां फूली न समातीं थीं
कई दिये जल उठे
लाखों-लाखों इंसानों के दिलों में
अल्प समय में ही
परम ज्ञान को उपलब्ध हो
तुमने किया, धार्मिक अंध-विश्वासों
पर तीव्र प्रहार !
तिलमिला गये पाखंडी
धर्म के दावेदार
और तुम करते रहे
अविचल, अविकल, निरन्तर ...
चिर-नूतन
सत्यों का आविष्कार
बांटते रहे अपना प्यार
खूब किया तुमने
मानवता पर उपकार
और
नियति का चक्र चलता रहा !

★

कभी-खंडन, कभी मंडन
करके सिद्ध किया तुमने
अपना जीवित व्यक्तित्व
'प्रेम' के जीवित उपासक
ये धरती तुम्हारी कर्जदार रहेगी
हमेशा-हमेशा ! चिरकाल तक !!

● *स्वामी दिनेश भारती*
इन्दौर

नोट :—

स्थानाभाव एवं समयाभाव के फलस्वरूप यह रचना पिछले अंक (विशेषांक) में नहीं ली जा सकी, अतः अब परिशिष्ट-रचना के रूप में ली जा रही है— सं०

साधना के दो मौलिक मार्ग : संकल्प और समर्पण

पर्युषण व्याख्यानमाला, सितंबर १९७२ के अन्तर्गत "महावीर-वाणी" पर भगवान श्री रजनीश के १८ प्रवचन हुए हैं। प्रस्तुत सामग्री दिनांक १९ सितम्बर, १९७२ को दिये गये १६ वें प्रवचन का प्रथम अंश है। १८ प्रवचनों का एक संकलन "महावीर-सूत्र" के नाम से शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। यह पूर्व प्रकाशित "महावीर-वाणी" (पृ० ६१२ मूल्य ३० रुपये) का दूसरा खण्ड होगा। आगामी ग्रंथ "महावीर-सूत्र" की एक झलक के रूप में इसे हम यहां प्रस्तुत करते हैं।

— सम्पादक

● एक मित्र ने पूछा है, कल आपने कहा था कि महावीर की चिंतना में प्रत्येक कृत्य और कर्म के लिए मनुष्य अकेला पूरा का पूरा खुद ही जिम्मेवार है, जबकि दूसरी चिन्तनाएं कहती हैं कि इतने बड़े संचालित विराट में मनुष्य की बिसात ही क्या है, परमात्मा की मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। इस चिंतना में कर्म को कहां रखिएगा? एक तरफ स्वतंत्रता की घोषणा और दूसरी ओर परतंत्रता की बात है या यों कहें कि डूइंग एण्ड हैपनिंग में ताल-मेल कैसे बैठेगा?

ताल-मेल बैठाने की बात से ही परेशानी शुरू हो जाती है। ताल-मेल बैठाना ही मत। दो मार्गों में ताल-मेल कभी भी नहीं बैठता। दोनों की मंजिल एक हो सकती है, लेकिन मार्गों में ताल-मेल नहीं बैठता। और जो बिठाने की कोशिश करता है, वह मंजिल तक कभी भी नहीं पहुंच पाता।

यह हो सकता है कि पहाड़ पर ले जाने वाले बहुत से रास्ते एक ही शिखर पर पहुंच जाते हों, लेकिन दो रास्ते, दो रास्ते ही हैं और उनको एक करने की कोशिश व्यर्थ है। और जो व्यक्ति दो रास्तों में ताल-मेल बिठा कर चलने की कोशिश करेगा, वह चल ही नहीं पाएगा।

मंजिल में समन्वय है, मार्गों में कोई समन्वय नहीं है, लेकिन हम सब मार्गों में समन्वय बिठाने की कोशिश करते हैं और उससे बड़ी कठिनाई होती है।

महावीर का मार्ग है, संकल्प का मार्ग। मीरा का मार्ग है, समर्पण का मार्ग। ये बिलकुल विपरीत मार्ग हैं, लेकिन मंजिल एक है। मीरा कहती है कि 'तू' ही सब कुछ है, 'मैं' कुछ भी नहीं। मेरा कोई होना ही नहीं। इसमें 'मैं' को पूरी तरह मिटा देना है। इतना मिटा देना कि कुछ शेष न रह जाए, शून्य हो जाए, 'तू' ही एक मात्र सत्ता बचे, 'मैं' बिलकुल खो जाए।

जिस दिन 'तू' की ही सत्ता बचेगी, उस दिन 'तू' का भी कोई अर्थ न रह जाएगा, क्योंकि 'तू' में जो भी अर्थ है, वह 'मैं' के कारण है। अगर मैं अपने 'मैं' को बिलकुल मिटा दूं, तो 'तू' में क्या अर्थ होगा? यह कहना भी व्यर्थ होगा कि 'तू' ही है। यह कौन कहेगा? यह कौन अनुभव करेगा? अगर मैं 'मैं' को पूरी तरह मिटा दूं, तो 'तू' में 'तू' का अर्थ ही न रह जायगा। एक मिट जाए, तो दूसरा भी मिट जाएगा।

मीरा कहती है, 'मैं' को हम मिटा दें, चैतन्य कहते हैं, 'मैं' को हम मिटा दें, कबीर कहते हैं, 'मैं' को हम मिटा दें। ये समर्पण के मार्ग हैं।

महावीर कहते हैं, 'तू' को हम मिटा दें, 'मैं' ही बच जाए। यह बिलकुल उल्टा है, लेकिन गहरे में उल्टा नहीं भी है, क्योंकि मंजिलें एक हैं। महावीर कहते हैं 'तू' को बिलकुल भूल ही जाओ उससे कुछ लेना-देना नहीं है, उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। जैसे 'तू' है ही नहीं, आपके लिए बस 'मैं' ही है। इस 'मैं' को ही अकेला बचा लेना है। जिस दिन 'मैं' अकेला बचता है, 'तू' बिलकुल नहीं होता, उस दिन 'मैं' का अर्थ खो जाता है, क्योंकि 'मैं' में सारा अर्थ 'तू' के द्वारा डाला गया है।

'मैं' और 'तू' साथ-साथ ही हो सकते हैं, अलग-अलग नहीं हो सकते। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई कहता है, सिक्के का सीधा पहलू फेंक दो, उल्टा भी उसके साथ ही फिक जायगा। कोई कहता है, सिक्के का उल्टा पहलू फेंक दो, सीधा भी उसके साथ ही फिक जाएगा।

महावीर कहते हैं, 'मैं' ही है अकेला अस्तित्व। जिस दिन 'तू' बिलकुल मिट जाएगा, उस दिन कोई परमात्मा नहीं बचेगा। महावीर परमात्मा को

कोई जगह नहीं देते, क्योंकि परमात्मा का मतलब है, 'तू' को जगह देना। कोई 'तू' नहीं है, 'मैं' ही हूं। सारा जिम्मा मेरा है, सारा फल मेरा है, सारे परिणाम मेरे हैं, जो भी भोग रहा हूं, वह मैं हूं। जो भी हो सकूंगा, वह भी मैं हूं। इस भांति अकेला 'मैं' ही बचे एक दिन और सब 'तू' विलीन हो जाए। उस दिन 'मैं' में कोई अर्थ नहीं रह जायगा, 'मैं' भी गिर जायगा।

चाहे 'तू' को बचाएं, चाहे 'मैं' को बचाएं, दो में से एक को बचाना मार्ग है। और अन्त में जब एक बचता है, तो एक भी गिर जाता है। क्योंकि वह दूसरे के सहारे के बिना बच नहीं सकता। कहां से आप शुरू करते हैं, यह अपनी वृत्ति, अपने व्यक्तित्व, अपनी रुझान की बात है— टाइप की बात है। लेकिन दोनों में मेल मत करना, दोनों में कोई मेल नहीं हो सकता, अन्यथा उनका जो नियोजित प्रयोजन है, वही समाप्त हो जाता है। इन दोनों में कोई मेल नहीं है।

महावीर और मीरा को कभी भूल कर मत मिलाना। वे बिलकुल एक दूसरे की तरफ पीठ करके खड़े हैं। जहां से वे चलते हैं, वहां उनकी पीठ है। जहां वे मिलते हैं, वहां वे दोनों ही खो जाते हैं।

मीरा नहीं बचती, क्योंकि 'मैं' को खोकर चलती है। और जब 'मैं' खो जाता है, तो 'तू' भी खो जाता है। महावीर भी नहीं बचते, क्योंकि 'तू' को खोकर चलते हैं और जब 'तू' बिलकुल खो जाता है, तो 'मैं' में कोई अर्थ नहीं रह जाता, वह गिर जाता है। दोनों पहुंच जाते हैं— परम शून्य पर, परम मुक्ति पर, लेकिन मार्ग बड़े विपरीत हैं।

हमारी सबकी तकलीफ यह है कि हम सोचते हैं सदा द्वन्द्व की भाषा में कि या तो महावीर ठीक होंगे या मीरा ठीक होगी, दोनों में से कोई एक ठीक होगा, ऐसी हमारी समझ में पड़ता है, क्योंकि दोनों कैसे ठीक हो सकते हैं ? वहीं गलती शुरू हो जाती है। **दोनों ठीक हैं।**

अगर हम यह भी समझ लेते हैं कि दोनों ठीक हैं, तो फिर हम तालमेल बैठाते हैं, हम सोचते हैं दोनों ठीक हैं, तो दोनों का मार्ग एक होगा। फिर भूल हो जाती है। दोनों ठीक हैं और दोनों का मार्ग एक नहीं है।

इस दुनिया में समन्वयवादियों ने जितना नुकसान किया है, उतना और किन्हीं ने नहीं किया है। जो हर चीज को मिलाने की कोशिश में लगे रहते हैं, वे खिचड़ियां बना देते हैं। सारा अर्थ खो जाता है। भले मन से ही करते

हैं वे कि कोई कलह न हो, कोई झगड़ा न हो, कोई विरोध न हो, लेकिन विरोध है ही नहीं। जिसको वे मिटाने चलते हैं, वह है ही नहीं।

महावीर और मीरा में विरोध नहीं है, मंजिल की दृष्टि से। मार्ग की दृष्टि से भिन्नता है। अलग-अलग छोर से उनकी यात्रा शुरू होती है। और यात्रा हमेशा वहां से शुरू होती है, जहां आप हैं।

ध्यान रखें, मंजिल से उसका कम सम्बन्ध है आप से ज्यादा सम्बन्ध है, कहां आप हैं। मैं पूरब में खड़ा हूं, आप पश्चिम में खड़े हैं, हम दोनों के मार्ग एकसे कैसे हो सकते हैं ? मैं जहां खड़ा हूं, वहीं से मेरी यात्रा शुरू होगी। आप जहां खड़े हैं, वहीं से आपकी यात्रा शुरू होगी। मीरा जहां खड़ी है, वहीं से चलेगी। महावीर जहां खड़े हैं, वहीं से चलेंगे।

मीरा है स्त्रैण चित्त की प्रतीक। महावीर है पुरुष चित्त का प्रतीक। स्त्रैण चित्त से मतलब, स्त्रियों का नहीं है। **अनेक स्त्रियों के पास पुरुष चित्त होता है और अनेक पुरुषों के पास स्त्री चित्त होता है।** चित्त बड़ी और बात है।

स्त्रैण चित्त का अर्थ है, समर्पण का भाव। अपने को किसी की शरण में खो देने की क्षमता, अपने को मिटा देने की। इतनी ग्राहकता कि मैं न रहूं और दूसरा ही रह जाए। स्त्री जब प्रेम करती है, तो उसका प्रेम बनता है समर्पण। प्रेम का अर्थ है मिट जाना। वह जिससे प्रेम करती है, वही रह जाए। इतनी एक हो जाए प्रेम करने वाले के साथ कि कोई भिन्नता न रह जाए। यह स्त्रैण चित्त एक रिसेप्टिविटी (ग्राहकता) समर्पण (सरेन्डर) है।

पुरुष प्रेम करता है, तो समर्पण नहीं है। पुरुष के प्रेम का अर्थ ही यह होता है कि वह समर्पण को पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। जब प्रेमिका उसे समर्पित होती है, तो वह पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। वह इतना आत्मसात् कर लेता है अपने में अपनी प्रेयसी को कि प्रेयसी नहीं बचती, वही बचता है। और प्रेयसी इतनी आत्मसात् हो जाती है प्रेमी में कि खुद नहीं बचती, प्रेमी ही बचता है। लेकिन पुरुष समर्पण नहीं करता। इसलिए यदि कोई पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करे और समर्पण कर दे उसके चरणों में, तो वह स्त्री उससे प्रेम ही नहीं कर पाएगी, क्योंकि समर्पण करने वाला पुरुष स्त्री जैसा मालूम पड़ेगा।

पुरुष है शिखर जैसा। स्त्री है खाई जैसी। दोनों की भाव दशाएं भिन्न हैं।

तो मीरा मिट जाती है और कृष्ण को अपने में समा लेती है। समर्पण उसका रास्ता है। वह कहती है, 'मैं' नहीं हूं 'तू' ही है और तेरी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता। बुरा हो मुझसे तो 'तेरा'। भला हो मुझसे तो 'तेरा'। पाप हो मुझसे, तो 'तेरा', पुण्य हो मुझसे, तो 'तेरा'। मेरा कुछ भी नहीं है।

यह मत सोचना कि मीरा यह कह रही है कि भला हो, तो 'मेरा' ही और बुरा हो, तो 'तेरा'— भला करूं, तो 'मैं' और पाप और बुरा हो जाए, तो 'तू'। न, मीरा कह रही है कि 'तू' ही है, 'मैं' हूं ही नहीं। इसलिए कुछ भी हो, अब मेरी कोई भी जिम्मेवारी नहीं है। क्योंकि जब मैं नहीं हूं, तो मेरी जिम्मेवारी का कोई सवाल ही नहीं है। तू डुबाए, तू बचाए, तू मोक्ष ले जाए, तू नर्क में डाल दे, तेरी मर्जी तेरी खुशी है। अब यह भी नहीं है कि तू मुझे मोक्ष ले जायगा, तो ही मेरी खुशी होगी। तू ले जाएगा यही मेरी खुशी है। कहां ले जायगा ? यह तू ही जान।

इतने समग्र भाव से अपने को छोड़ सके कोई, तो फिर कोई कर्म का बन्धन नहीं है, क्योंकि कर्ता ही न रहा।

ठीक से समझ लें।

जब तक करने वाले का भाव है, तभी तक कर्म का बन्धन है। मैं करने वाला ही नहीं हूं, वही करने वाला है। यह विराट जो अस्तित्व है, वही कर रहा है। फिर कोई कर्म का बन्धन नहीं है।

कर्म बनता है, कर्त्ता के भाव से, अहंकार से। इसलिए मीरा स्त्रैण-चित्त की परिपूर्ण अभिव्यक्ति में अपने को खो देती है। मीरा ही ऐसा करती है— ऐसा नहीं, चैतन्य भी यही करते हैं। इसलिये पुरुष या स्त्री का सवाल नहीं है, प्रतीक हैं।

महावीर बिलकुल भिन्न हैं। महावीर कहते हैं, समर्पण कैसा ? किसके प्रति समर्पण ? और महावीर कहते हैं कि समर्पण भी मैं ही करूंगा, वह भी मेरा ही कृत्य है। **महावीर सोच ही नहीं सकते समर्पण की भाषा, वे पुरुष-चित्त के शिखर हैं।** इसलिये ईश्वर को इन्कार ही कर दिया, क्योंकि ईश्वर होगा, तो समर्पण करना ही पड़ेगा।

कोई और नहीं है, मैं ही हूं। इसलिये सारी जिम्मेवारी का बोझ, मेरे ही ऊपर है। वह मुझे ही खींचना है। मुझे ही तय करना है कि क्या करूं ? क्या न करूं ? और जो भी परिणाम हो वह मुझे जानना है कि मेरे ही द्वारा

हुआ है। इसलिए 'मैं' छोड़ने का कोई उपाय ही नहीं है। मुझे अपने को बदलना है। और शुद्ध, शुद्धतर और शुद्धतर—इतना शुद्ध हो जाना है, इतना ट्रान्सपेरेन्ट, इतना पारदर्शी हो जाना है कि कुछ बुरा मुझ में न रह जाये।

इस शुद्ध करने की प्रक्रिया में ही 'मैं' विलीन होगा, लेकिन समर्पित नहीं होगा।

इसका फर्क समझ लें।

मीरा समर्पण करेगी, 'मैं' खो जायगा। महावीर शुद्ध करेंगे, शून्य करेंगे अपने को और 'मैं' खो जायगा, लेकिन महावीर श्रम करेंगे, मीरा समर्पण करेगी।

इसलिये महावीर और बुद्ध की संस्कृति को हम कहते हैं, श्रमण संस्कृति। श्रम पर उनका जोर है, पुरुषार्थ पर उनका बल है। कुछ करो। इसलिये महावीर कहते हैं कि मैं श्रम करूंगा अपने साथ और जो भी परिणाम होगा, स्वीकार करूंगा। नर्क होगा, तो भी जानूंगा कि मेरे द्वारा और मोक्ष होगा, तो भी जानूंगा कि मेरे द्वारा, लेकिन किसी और पर जिम्मेवारी नहीं रखूंगा। यह पुरुष-चित्त का लक्षण है कि वह किसी और पर जिम्मेवारी नहीं रखेगा।

आप कहां हैं, इसे सोच लेना चाहिये। क्या आप पुरुष हैं? क्या आप स्त्री हैं? **चित्त की दृष्टि से, शरीर की दृष्टि से नहीं।**

आपका भाव भीतर समर्पण करने का है या संकल्प को संभाले रखने का है? मगर एक बात तय करलें कि दोनों के बीच मत दौड़ना, क्योंकि नपुंसक के लिये कोई भी जगह नहीं है। वे जो समझौते वाले हैं, वे अक्सर नपुंसक पैदा कर देते हैं। वे जो समन्वयवादी हैं, जो कहते हैं—दोनों में थोड़ा तालमेल करलो, थोड़ा मीरा का भी लो, थोड़ा महावीर का भी लो, थोड़ा कुरान का भी, थोड़ा गीता का भी—अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, दोनों को जोड़ो, फिर इनको मिलाकर चलो। इस तरह के लोग सारे मार्गों को भ्रष्ट कर देते हैं।

हर मार्ग की अपनी शुद्धता है, प्योरिटी है। और बड़े से बड़ा अन्याय जो हम कर सकते हैं, वह किसी मार्ग की शुद्धता को नष्ट करना है। हर मार्ग पूरा है। पूरे का अर्थ यह है कि उससे मंजिल तक पहुंचा जा सकता है। दूसरे मार्ग की कोई भी जरूरत नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि दूसरे मार्ग से नहीं पहुंचा जा सकता, दूसरा मार्ग भी उतना ही पूरा है उससे भी पहुंचा जा

सकता है। आप मार्गों को मिलाने की बजाय, यही सोचना कि आप कहां खड़े हैं। कहां से आपके लिए निकटतम मार्ग मिल सकता है। फिर दूसरे को भूल-कर भी मत सुनना।

हम बड़े अजीब लोग हैं। हम इसकी फिकर ही नहीं करते कि कौन कहां खड़ा है।

एक मित्र हैं, उनकी पत्नी का भाव है— भक्ति का, समर्पित होने का, छोड़ देने का—परमात्मा के चरणों में। मित्र का भाव नहीं है उनका भाव है, अपने को शुद्ध करने का, रूपांतरित करने का, अपने को बदलने का। ठीक है, लेकिन वे मित्र अपनी पत्नी को भी भक्ति में नहीं जाने देते, क्योंकि वे मानते हैं कि वे जो कहते हैं, वही ठीक है। (उनके लिए ठीक है वह, उनकी पत्नी के लिए ठीक नहीं है।) लेकिन जो पति के लिए ठीक है, वह पत्नी के लिए भी ठीक होना चाहिये, ऐसी उनकी धारणा है। अगर कल उनकी पत्नी भी उन पर जोर देने लगे कि तुम भी चलो मंदिरों में और नाचो, कीर्तन करो और गाओ, तो मैं कहूंगा कि वह भी गलती कर रही है। क्योंकि जो उसके लिए ठीक है, वही उसके पति के लिए भी ठीक है—ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है।

दूसरे पर कभी भी मत थोपना— अपना ठीक होना, क्योंकि आपको पता नहीं कि दूसरा कहां खड़ा है। आप जहां खड़े हैं, अपना रास्ता आप चुन लेना। दूसरा जहां चल रहा है, उसे चलने देना।

अक्सर बहुत लोग दूसरों के रास्ते पर बड़ी बाधाएं उपस्थित करते हैं उसका कारण है कि वे समझ ही नहीं पाते कि कोई दूसरा रास्ता भी हो सकता है। हम सबको ऐसा खयाल है कि **सत्य एक है, यह बिलकुल ठीक है,** लेकिन इसके कारण हमको एक खयाल और भी पैदा हो गया है कि **सत्य का मार्ग भी एक है, यह बिलकुल गलत है।** सत्य एक है, सौ प्रतिशत ठीक। सत्य का मार्ग एक है, सौ प्रतिशत गलत।

सत्य के मार्ग अनन्त हैं, अनेक हैं। असल में जितने पहुंचने और चलने वाले लोग हैं, उतने मार्ग हैं। हर आदमी अपनी ही पगडंडी से चलता है। और अस्तित्व की यात्रा में हम अलग-अलग जगह खड़े हैं। और अस्तित्व की यात्रा में हमने अलग-अलग चित्त निर्मित कर लिया है। जन्मों-जन्मों में हम सबके पास अलग-अलग भाव-दशा निर्मित हो गई है। हम उससे ही चल सकते हैं।

दूसरे के मार्ग पर चलने का कोई उपाय ही नहीं है। जैसे दूसरे के पैरों से चलने का कोई उपाय नहीं है, वैसे दूसरे के मार्ग पर भी चलने का कोई उपाय नहीं है। और जब एक दूसरे को लोग अपने मार्गों पर घसीटते हैं तो पंगु कर देते हैं, उनके पैर काट डालते हैं। बहुत हिंसा होती है ऐसे, लेकिन हमारे खयाल में नहीं आती।

ताल-मेल बिठाना मत। अगर यह बात ठीक लगती हो कि 'परमात्मा की मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता' तो पूरे के पूरे इसमें डूब जाना, ताकि 'मैं' मिट जाय। लेकिन यह समग्र हो। फिर एक आदमी आकर पत्थर मार जाए सिर में, तो यह मत सोचना कि इस आदमी ने पत्थर मारा। फिर सोचना कि 'परमात्मा की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता।' लेकिन हम जिनको बहुत विचारशील लोग कहते हैं, वे भी भ्रांतियां करते हैं और हम भी उन भ्रांतियों को समझ नहीं पाते। अगर हमें रुचिकर लगती हैं, तो समझने की हम फिकर ही नहीं करते।

महात्मा गांधी की हत्या की बात चलती थी, हत्या के पहले। तो सरदार बल्लभ भाई पटेल ने जाकर कहा कि मैं सुरक्षा का इन्तजाम करूं ? तो गान्धी जी ने जो कहा, वह पूरे मुल्क को प्रीतिकर लगा, लेकिन बिल्कुल ना-समझी से भरी हुई बात है। गान्धी जी ने कहा कि 'उसकी मर्जी' के बिना, मुझे कोई हटा भी कैसे सकेगा ! (वह बात बिलकुल ठीक है।) अगर ईश्वर चाहता है, तो मुझे उठा लेगा, तुम मुझे कैसे बचाओगे ? यह, 'उसकी मर्जी के बिना पत्ता नहीं हिलता'— इस विचार का आनुषांगिक हिस्सा है— अगर वह, मुझे बचाना चाहता है, तो कोई मुझे उठा नहीं सकता। अगर वह मुझे उठाना चाहता है, तो कोई मुझे बचा नहीं सकता।

सरदार बल्लभ भाई को भी ठीक लगा और तर्क करने का कोई उपाय न रहा।

मैं उनकी जगह होता, तो गान्धी जी को कहता कि 'वह तो खुद हत्या करने आयेगा नहीं, नाथूराम गोडसे का उपयोग करेगा। और अगर 'उसको' बचाना है, तो भी खुद बचाने नहीं आएगा, बल्लभ भाई पटेल का उपयोग करेगा।

तो आधी बात कह रहे हैं आप। आप कहते हैं कि अगर 'वह' उठाना चाहेगा, तो कोई बचा नहीं सकेगा और जो उठाने वाले हैं, वे चारों तरफ घूम

रहे हैं और जिनके द्वारा 'वह' बचा सकता है, वे इसलिए रुक जाएंगे कि हम क्या बचा सकते हैं।

अगर मैं गान्धी जी की जगह होता, तो मैं कहता कि तुम अपनी कोशिश करो और नाथूराम गोडसे को अपनी कोशिश करने दो। आखिर 'उसकी जो मर्जी होगी', वह तो होगी, लेकिन तुम दोनों अपनी कोशिश करो। क्योंकि 'उसकी मर्जी' भी तो किसी के द्वारा होगी।

गान्धी जी ने आधी बात कही। उसमें उन्होंने एक पत्ते को हिलने दिया, दूसरे पत्ते को रोकने की कोशिश की। सब 'उसकी मर्जी' से हो रहा है, उन्होंने कहा जरूर, लेकिन उनको भी साफ नहीं है; नहीं तो बल्लभ भाई को भी रोकने का कोई अर्थ नहीं था। अगर 'उसकी ही मर्जी से' यह सरदार भी हिल रहे हैं, तो उनको भी हिलने दो। लेकिन गोडसे हिलता रहेगा 'उसकी मर्जी से' और सरदार गांधी जी की मर्जी से रुक रहे हैं।

जीवन जटिल है। मैं मानता हूं कि गान्धी जी का पूरा भरोसा नहीं है 'उसकी मर्जी पर' नहीं तो वे कहते कि ठीक है किसी को वह इशारा कर रहा होगा मुझे मारने का, तुम्हें इशारा करता है मुझे बचाने का। **'जो उसकी मर्जी' वह हो,** मैं बीच में नहीं आऊंगा। लेकिन गान्धी बीच में आये और उन्होंने सरदार को रोका। नाथूराम को तो नहीं रोक सकते, सरदार को रोक सकते हैं। गान्धी का 'उसकी मर्जी पर' पूरा भरोसा नहीं है।

ऐसी आलोचना किसी ने भी नहीं की है। किसी ने भी यह नहीं कहा कि गान्धी जी को 'उसकी मर्जी पर पूरा भरोसा नहीं है।' (पूरा भरोसा नहीं है।) बाएं हाथ को तो मानते हैं 'उसका' हाथ, पर दाएं हाथ को नहीं मानते 'उसका' हाथ।

हम भी ऊपर से देखेंगे, तो हमें भी खयाल में नहीं आएगा। लेकिन **जिन्दगी ज्यादा गहरी है, जैसा हम ऊपर से देखते हैं, वैसी उथली नहीं है।**

अगर सच में ही इस बात का भरोसा है कि 'उसकी मर्जी', तो फिर ठीक है, फिर आपके लिए कुछ भी अपनी तरफ से जोड़ने का कोई सवाल नहीं है। फिर आप बहते हैं। फिर आप पूरे ही बहें और जो भी हो— मानें कि ठीक है। अगर इसमें आपको अड़चन मालूम पड़ती हो, कि ऐसे हम अपने को कैसे छोड़ सकते हैं—नदी कहीं भी बहा ले जाय, पता नहीं कहां; तो फिर नदी के बाहर निकल कर खड़े हो जाएं। फिर यह बात ही छोड़ दें कि 'उसकी मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।' फिर तो एक ही बात स्मरण रखें कि पत्ता

हिलेगा, तो मेरी मर्जी से—नहीं हिलेगा, तो मेरी मर्जी से। हिलता है तो मैंने चाहा होगा—इसलिए हिलाता है, चाहे मुझे पता न हो। और नहीं हिलता है, तो मैंने चाहा होगा कि न हिले— चाहे मुझे पता न हो। मैंने जो किया है, उसके कारण हिलता है और मैंने जो किया है, उसके कारण रुकता है। फिर सारी जिम्मेवारी अपने पर ले लेना।

दोनों तरह के लोग पहुंच गये हैं। लेकिन दोनों को मिलाकर अब तक सुना नहीं कि कोई पहुंचा हो।

दोनों को मिलाने वाला वही आदमी है, जो चलना ही नहीं चाहता। असल में दोनों को मिलाना एक तरकीब है, एक डिसेप्शन, एक वंचना है। खुद को धोखा है। उसका मतलब यह कि जब जैसा मतलब होगा, जब जैसा अपने अनुकूल होगा, उसको कह लेंगे। जब कोई बुरी बात घटेगी, तो कहेंगे कि 'उसकी मर्जी' और जब कुछ ठीक हो जायगा, तो कहेंगे अपना 'संकल्प'।

मिलाने का मतलब यह होता है कि हम दोनों नावों पर पैर रखेंगे। यह इसमें होशियारी तो है, चालाकी तो है, लेकिन बहुत बुद्धिमानी नहीं है।

चालाक आदमी दोनों नाव पर पैर रखता है। पता नहीं, कब किसकी जरूरत पड़ जाए। चालाकी उनकी ठीक है, लेकिन मूढ़तापूर्ण है। क्योंकि दो नाव पर कोई भी सवार होकर चल नहीं सकता। दो नावों पर जो सवार होता है, वह डूबेगा। और अगर नहीं डूबना है, तो नाव को खड़ा रखना पड़ेगा। चलाना नहीं पड़ेगा। फिर चलाने वाला भी वहीं खड़ा रहेगा। और खड़े रहना भी कहीं पहुंचना नहीं है, वह भी डूबना ही है।

महावीर को समझते वक्त मीरा को बीच में मत लायें। महावीर के रास्ते पर, मीरा से कहीं भी मिलन नहीं होगा और मीरा के रास्ते पर, महावीर से कोई मुलाकात नहीं होगी। आखिर में जहां महावीर भी खो जाते हैं और मीरा भी खो जाती है, वहां मिलन है।

जब तक महावीर हैं, तब तक संकल्प रहेगा और जब तक मीरा है, तब तक समर्पण रहेगा। और जहां समर्पण समाप्त हो जाता है, वहीं संकल्प भी समाप्त हो जाता है। मंजिल जब आती है, तो रास्ते समाप्त हो जाते हैं।

मंजिल का मतलब क्या है ? मंजिल का मतलब है, रास्ते का समाप्त हो जाना, रास्ते से मुक्त हो जाना। मंजिल का मतलब है, रास्ता खत्म हुआ। मंजिल रास्ते की पूर्णता है। और जो भी चीज पूर्ण हो जाती है, वह मर जाती है। फल पक जाता है, तो गिर जाता है। रास्ता पक जाता है, तो खो जाता है। फिर मंजिल रह जाती है।

मंजिल पर मिलन है। सागर में नदियां मिल जाती हैं। जो नदी पूरब की तरफ बही, वह भी जाकर गिर जाती है—हिन्द महासागर में। जो पश्चिम की तरफ बही, वह भी जाकर गिर जाती है— हिन्द महासागर में। अगर रास्ते में उन दोनों का कहीं मिलना हो, तो वे नहीं मान सकती कि वे दोनों सागर में जा रही हैं। पूरब चलने वाली नदी कहेगी कि पागल हो गई हो, पश्चिम जा रही हो, सागर पूरब है। पश्चिम जाने वाली नदी कहेगी, पागल तू है, सागर पश्चिम है। सदा से हम गिरते रहे और जानते रहे कि सागर पश्चिम है।

सागर सब ओर है। **सागर का मतलब ही है, जो सब ओर है।** कहीं से भी जाओ, पहुंचना हो सकता है। एक ही बात का ध्यान रखना कि चलना, रुक मत जाना। तालाब भर ही नहीं पहुंचते, नदियां तो सब पहुंच जाती हैं।

समझौतावादी तालाब की तरह हो जाते हैं, ठहर जाते हैं। थोड़ा पूरब भी चलते हैं, थोड़ा पश्चिम भी चलते हैं और चारों दिशाओं में चलने की वजह से चक्कर लगाने लगते हैं। अपनी जगह पर एक ही जगह पर, घूमते रहते हैं। वहीं सूखते हैं, सड़ते हैं।

समझौता नहीं है मार्ग— धर्म में। दर्शन में भला हो, विचार में भला हो। जिनको चलना है, उनके लिए समझौता मार्ग नहीं है। उनके लिए तो स्पष्ट चुनाव जरूरी है। और चुनाव करना अपनी आन्तरिक भाव-दशा के अवलोकन से— दूसरे की बातों से नहीं। **अपने को सोचना कि मैं क्या कर सकता हूं— समर्पण या संकल्प।**

● सम्पादन : *स्वामी चैतन्य भारती*

भाव-संकेत

"बिखेर आया हूं कुछ
'क्रांति बीज' 'साधना-पथ' पर
अरे, कोई तो उभरेगा,
'ज्योति-शिखा' बनकर
बस इसी 'सिंहनाद' में लुप्त है
'मैं कौन हूं' बोध मेरा
अंत में स्वीकार करें,
प्रभु को प्रणाम मेरा।"

● *सबसुख*, जबलपुर

अपात्रता का बोध और यात्रा का प्रारंभ

आगामी ग्रंथ "महावीर-सूत्र" (महावीर-वाणी भाग–२) के १६ वें प्रवचन का द्वितीय अंश।

–सम्पादक

● एक मित्र ने पूछा है कि मैं तो बहुत पापी हूं, आकांक्षा होती है प्रभु तक पहुंचने की। क्या मुझ जैसे पापी के लिए प्रभु का द्वार खुला होगा? मैं बहना ही चाहूं, बहता ही रहूं, तो भी क्या परमात्मा के सागर को पा सकूंगा?

यह महत्वपूर्ण है भाव, क्योंकि **जो जान लेता है कि मैं पापी हूं, उसके जीवन में पुण्य का प्रारम्भ हो जाता है।** यह एक पंडित का प्रश्न नहीं है, एक धार्मिक व्यक्ति का प्रश्न है। पंडित ज्ञान की बातों में से प्रश्न उठाता है, धार्मिक व्यक्ति अपनी अन्तरदशा में से प्रश्न उठाता है। पंडित के प्रश्न शास्त्रों में से आते हैं, धार्मिक व्यक्ति के प्रश्न अपनी स्थिति से आते हैं।

यह भाव कि मैं पापी हूं, धार्मिक भाव है। यह जानना कि मेरा पहुंचना मुश्किल है, पहुंचने के लिए पहला कदम है। यह मानना कि क्या मेरे लिए भी प्रभु के द्वार खुले होंगे, द्वार पर पहली दस्तक है।

वे ही पहुंच पाते हैं, जो इतने विनम्र हैं। जो बहुत अकड़ से चलते हैं, जो सोचते हैं कि दरवाजे का क्या सवाल, परमात्मा रास्ते में स्वागत के लिए खड़ा होगा— द्वार बन्दनवार बनाकर, वे कभी नहीं पहुंच पाते। क्योंकि उस परमसत्ता में लीन होना

है। लीनता यहीं से शुरू होगी। आपकी तरफ से शुरू होगी। परमसत्ता के कोई द्वार नहीं हैं कि बन्द हों।

समझ लें इसको।

कोई दरवाजे नहीं हैं उसके—महल के कि बन्द हों। **परमसत्ता खुलापन है।** परमसत्ता का अर्थ है, खुला हुआ होना। खुली ही हुई है—परमसत्ता।

सवाल उसकी तरफ से नहीं है कि वह आपको रोके, बुलाए, खींचे। सवाल सब आपकी तरफ से है कि आप भी उस खुलेपन में उतरने को तैयार हैं। आप कहीं बन्द तो नहीं हैं? परमात्मा बन्द नहीं है।

सूरज निकला है और मैं अपने द्वार-दरवाजे बन्द करके, घर में आंख बन्द किए बैठा हूं और सोच रहा हूं कि अगर मैं द्वार के बाहर जाऊं, तो सूरज से मेरा मिलन होगा। मैं आंख खोलूं, तो सूरज मुझ पर कृपा करेगा?

सूरज की कृपा बरस ही रही है, अकृपा कभी होती ही नहीं। वह सदा मौजूद ही है द्वार पर। आप द्वार खोलें। द्वार आपने बन्द किए हैं, उसने नहीं। आप आंखें खोलें। आंखें आपने बन्द कर रखी है।

परमात्मा है सदा खुला हुआ। हम हैं बन्द।

हमारे बन्द होने में सबसे बड़ा कारण क्या है?

सबसे बड़ा कारण यह है कि हम यह मान कर चलते हैं कि हम तो खुले हुए हैं। अन्धे को अगर यह ख्याल हो कि मेरी आंखें तो खुली हुई हैं, तब बहुत अड़चन हो जाती है। हम सब मानते हैं कि हम तो खुले ही हुए हैं।

हम **खुले हुए नहीं हैं, हम बिल्कुल बन्द हैं।** और अगर परमात्मा हमारे द्वार पर भी आ जाए, तो शायद ही सम्भावना है कि उसे हम भीतर आने दें। बहुत मुश्किल है कि हम उसके लिए दरवाजा खोलें। क्योंकि वह इतना अजनबी होगा और हमने उसे कभी देखा नहीं। उससे ज्यादा अजनबी कोई भी न होगा।

हम पहले पूछेंगे, कहां के रहने वाले हो? **हिन्दू** हो कि **मुसलमान**? कि **जैन**? कोई कैरेक्टर सर्टिफिकेट साथ लाए हो?

परमात्मा तो इतना स्ट्रेन्जर (अजनबी) होगा कि अगर हमारे द्वार पर आ जाए, तो हम भाग खड़े होंगे। अगर परमसत्ता हमारे पास आ जाए, तो हम भाग खड़े होंगे, क्योंकि हम उसे बिल्कुल न पहचान पाएंगे। हम पहचानते उसे हैं जिसे हम पहिले से जानते हैं। जिसे हमने कभी जाना नहीं, उसे हम

पहचानेंगे कैसे ? हम उससे सवाल पूछेंगे, हम उसकी इन्क्वायरी करेंगे, हम पुलिस दफ्तर में जाकर पूछ-ताछ करेंगे कि यह आदमी कैसा है ! घर में ठहरना चाहता है ! और हम द्वार बन्द कर लेंगे।

अजनबियों के लिए हमारे द्वार खुले हुए नहीं हैं। और परमात्मा से ज्यादा अजनबी कौन होगा ?

हमारी नीति, हमारे चरित्र के नियम, सब छोटे पड़ जायेंगे। उनसे हम 'उसे' नाप न पाएंगे। बड़ी अड़चन होगी। हमने बहुत बार यह किया है।

हम, महावीर मौजूद हों, तो नाप नहीं पाते। बुद्ध मौजूद हों, तो नाप नहीं पाते। जीसस मौजूद हों, तो नाप नहीं पाते। हम कैसे बेहूदे सवाल पूछते हैं—जीसस से, बुद्ध से, महावीर से ? वह असल में हम अजनबीपन के कारण पूछते हैं।

जीसस एक वैश्या के घर ठहर गए,

आपने क्या पूछा होता सुबह ? जीसस को घेर कर आप क्या सवाल उठाते ?

हम वही सवाल उठा सकते हैं, जो हम वेश्या के घर ठहरे होते, तो जो हमने किया होता, वही सवाल हम उठाएंगे। हम यह सोच भी नहीं सकते कि जीसस के होने का कोई और अर्थ भी हो सकता है। **जीसस को कोई बुद्ध जैसा व्यक्ति ही समझ सकता था।**

बुद्ध का एक शिष्य वेश्या के घर ठहर गया। सारे भिक्षु परेशान हो गए, और उन्होंने आकर बुद्ध को शिकायत की कि यह तो बहुत अशोभन बात है कि हमारा भिक्षु और एक वेश्या के घर ठहर गया। (ये जो भिक्षु थे, ये ठहरना चाहते होंगे वेश्या के घर। यह ईर्ष्या से उठा हुआ सवाल था।)

बुद्ध ने कहा कि अगर तुम ठहर जाते, तो मुझे चिन्ता होती। जो ठहर गया है उसे मैं जानता हूं। लेकिन शिष्यों ने कहा कि आप यह अन्याय कर रहे हैं। इससे तो रास्ता खुल जाएगा। इससे तो और लोग ठहरने लगेंगे। ('और लोग' मतलब, वे अपने को सोच रहे हैं कि क्या गुजरेगी उन पर अगर वे वेश्या के घर ठहर जाएं।)

हम हमेशा अपने से सोचते हैं। और तो कोई उपाय भी नहीं है। हम अपने से ही सोचते हैं।

और वेश्या बहुत सुन्दरी है, उन भिक्षुओं ने कहा और उसके आकर्षण से बचना बहुत मुश्किल है, रात भर भिक्षु वहीं ठहर गया है और हमने तो यह भी सुना है कि रात, आधी रात तक गीत भी चलता रहा, नाच भी चलता रहा। यह क्या हो रहा है ?

बुद्ध ने कहा, मैं उस भिक्षु को भली-भांति जानता हूं। और अगर मेरा भिक्षु वेश्या के घर ठहरता है, तो मेरा भिक्षु वेश्या को बदलेगा, न कि वेश्या भिक्षु को। और अगर मेरे भिक्षु को वेश्या बदल लेती है, तो वह भिक्षु इस योग्य ही न रहा कि अपने को भिक्षु कहे, तो इसमें ठीक ही हुआ, इसमें बिगड़ा क्या ? जो बदला जा सकता है, वही बदला जाएगा।

सुबह ऐसा हुआ कि भिक्षु वापस आया और पीछे उसके वेश्या आई, तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा कि इस वेश्या को देखो।

उस वेश्या ने बुद्ध से कहा कि मैं आपके चरणों में आना चाहती हूं। पहली दफे मुझे एक पुरुष मिला, जिसको मैं डांवा-डोल न कर सकी। अब मेरे मन में भी यह भाव उठा है कि कब ऐसा क्षण मुझे भी आएगा कि कोई मुझे डावां-डोल न कर सके। जो इस भिक्षु के भीतर घटा है, वही मेरे भीतर भी घट जाए। अब इसके सिवाय मेरी और कोई आकांक्षा नहीं है।

लेकिन कठिन है। हम जो हैं, वही हम सोच पाते हैं। इसलिए बुद्ध हों, महावीर हों, हम अपनी तरफ से सोचते हैं—हम अपने ढंग से सोचते हैं। कोई उपाय भी नहीं हैं। हमारी भी मजबूरी है। हम वही ढंग जानते हैं। हम वही दृष्टि जानते हैं। हम अपनी आंख से ही तो देखेंगे। किसी और की आंख से कैसे देख सकते हैं ?

परमात्मा अगर आपके द्वार पर भी आ जाए, तो आप नहीं पहचानेंगे, यह पक्का है। और आप उसे ठहरने भी नहीं देंगे, यह भी पक्का है। नहीं, लेकिन परमात्मा आपके द्वार पर आता भी नहीं। वह सदा खुला हुआ आकाश है चारों तरफ।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा है खुला हुआ आकाश। परमात्मा है स्पेस—चारों तरफ कूद जाएं आप, तो आकाश आपको अपने में लीन करने को सदा तत्पर है। आप खड़े रहें, तो आकाश आपको खींच कर जबरदस्ती लीन करना नहीं चाहता, क्योंकि उतनी हिंसा भी अस्तित्व को स्वीकार नहीं हैं। आप स्वतन्त्र हैं—रुकने को, कूद जाने को। सागर मौजूद है।

नदियों को निमन्त्रण भी नहीं देता, बुलाता भी नहीं। नदियां स्वतन्त्र हैं—रुक जाएं, तालाब बन जाएं, छलांग ले लें, सागर में खो जाएं।

जिस व्यक्ति को यह ख्याल हो रहा हो कि मैं पापी हूं, वह निश्चिन्त रहे। यह ख्याल महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस ख्याल में ही अहंकार गलता है। जिसको यह ख्याल हो रहा हो कि क्या मेरे लिए 'उसके द्वार' खुले होंगे, तो वह निश्चिन्त रहे। **'उसके द्वार'** उसके लिए बिलकुल ही खुले हुए हैं। वह बहता रहे और धीरे-धीरे अपने को डुबाता रहे। एक न एक दिन वह घड़ी घटती है, जब भीतर, वह जो अहंकार की छोटी सी टिमटिमाती ज्योति है, वह बुझ जाती है। और जिस दिन वह टिमटिमाती ज्योति बुझती है, उसी दिन तुम्हें पता चलता है उस सूर्य का, जो हमेशा मौजूद है। लेकिन हम अपनी टिम-टिमाती ज्योति में इतने लीन थे कि सूर्य की तरफ आंख भी नहीं गई थी।

जब तक 'मैं' न बुझ जाए, तब तक मुझे उसका पता नहीं चलता, जो चारों तरफ मौजूद है। क्योंकि मैं अपने में ही संलग्न हूं। मैं अपने में ही लगा हुआ हूं। टू मच अकुपाइड विद माई सेल्फ। सारी व्यस्तता अपने में लगी है।

जिस दिन जीसस को सूली हुई, उस दिन उस गांव में एक आदमी की दाढ़ में दर्द था। सारा गांव जीसस को सूली देने जा रहा है। जीसस कन्धे पर क्रास लेकर उस मकान के सामने से निकल रहे हैं। वह आदमी बैठा है और जो भी रास्ते से निकलते हैं, वह उनसे अपनी दाढ़ के दर्द की चर्चा करता है। वह कहता है कि आज बड़ी तकलीफ है दांत में। लोग कहते हैं, छोड़ो भी, पता है कुछ! आज मरियम के बेटे जीसस को सूली दी जा रही है। वह आदमी सुनता है, लेकिन अनसुना कर देता है। वह कहता है दी जा रही होगी, लेकिन दांत में बहुत दर्द है।

जिस दिन जीसस को सूली हुई, उस दिन वह आदमी अपने दांत में ही उलझा था। उस दिन इस पृथ्वी का बड़े से बड़ा चमत्कार घट रहा था, लेकिन वह आदमी अपने दांत के दर्द में उलझा था।

हम सब ऐसे ही लोग हैं, जिनकी दाढ़ में दर्द है। अपनी-अपनी दाढ़ का दर्द लिये बैठे हैं। **चारों तरफ विराट घटना घट रही है हर पल। 'वह' मौजूद है सब तरफ, लेकिन हमारी दाढ़ दुख रही है।** हम उसी में लीन हैं।

और अहंकार बड़ी पीड़ा का घाव है। दाढ़ भी वैसा दर्द नहीं देती, जैसा अहंकार देता है।

खयाल है आपको ! **दाढ़ के दर्द** में थोड़ी मिठास भी होती है। दर्द भी होता है, मिठास भी होती है।

अहंकार के दर्द में बड़ी मिठास होती है। दर्द भी होता है, तो हम सोचते हैं कि छोड़ दें, लेकिन मिठास इतनी होती है कि हम छोड़ भी नहीं पाते। उस मिठास के कारण ही हम दर्द को भी झेलते हैं।

जब कोई गाली देता है, तो चोट लगती है, दर्द होता है। जब कोई फूल-माला गले में डालता है, तब मिठास भर जाती है—सारे शरीर में। रोआं-रोआं पुलकित हो जाता है।

यह दोनों बात एक साथ छोड़नी पड़ेंगी। अगर गाली का दुख छोड़ना है, तो फिर फूल-माला का सुख भी छोड़ देना पड़ेगा। वह सुख इतना मीठा है कि हम कितने ही दुख उसके लिए झेल लेते हैं। हजार कांटे हम झेल लेते हैं, फूल के लिए। हजार निन्दा झेल लेते हैं, एक प्रशंसा के लिए। मिठास है बहुत।

इस मिठास को और पीड़ा को एक साथ देखना होगा। और धीरे-धीरे इस 'मैं' के भाव को छोड़ते जाना होगा। एक दिन, **जिस दिन 'मैं' नहीं रहता, उस दिन मिलन हो जाता है।**

इस 'मैं' के न रहने के दो रास्ते हैं। एक रास्ता है महावीर का और एक है मीरा का। एक रास्ता है कि इस 'मैं' को इतना शुद्ध करो, इतना परि-शुद्ध करो कि उसकी शुद्धता के कारण ही वह शून्य होकर तिरोहित हो जाए। दूसरा रास्ता है कि यह जैसा है, वैसा ही परमात्मा के चरणों में रख दो। उसके चरण में रख देना, आग में रख देना है। वह आग जला लेगी, निखार लेगी।

दोनों कठिन हैं, ध्यान रखना। आम तौर से लोग सोचते हैं कि दूसरी बात सरल मालूम पड़ती है। समर्पण कर दिया, खतम हुआ मामला। लेकिन समर्पण कर दिया। समर्पण आसान नहीं है। न तो संकल्प आसान है, न तो समर्पण आसान है। दोनों एक से कठिन हैं या दोनों एक से आसान हैं। कभी भूल कर यह मत सोचना कि ये सरल हैं। सरल का मतलब यह है कि जिसमें आपको धोखा देने की सुविधा हो, उसको आप सरल समझते हैं। कहा कि कर दिया समर्पण, लेकिन समर्पण आसान है ?

कई लोग आकर मेरे पास कहते हैं कि मैं सब समर्पण करता हूं, आप जो चाहें— करें। अगर उनसे मैं कहूं कि **कूद जाओ 'बुडलैण्ड' के ऊपर से,** तो

वे कूदने वाले नहीं हैं। कह रहे थे कि समर्पण कर दिया। मैं भी कूदाने वाला नहीं हूं। लेकिन क्या भरोसा! कभी कह भी दूं तो वे कूदने वाले नहीं हैं। जैसे ही मैं यह कहूंगा, वैसे ही वे कहेंगे कि क्या कह रहे हैं आप! वे भूल गए समर्पण। समर्पण का अर्थ क्या होता है? बोधि-धर्म भारत से चीन गया, तो नौ साल तक दिवार की तरफ मुंह रखता था और पीठ लोगों की तरफ रखता था। बोलता था, तो मेरे जैसा नहीं। आपकी तरफ पीठ, मुंह दीवार की तरफ। (हालांकि बहुत फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि **जब मैं बोल रहा हूं, तो आप पीठ मेरी तरफ किए हुए हैं**। कोई फर्क नहीं पड़ता, मुंह आपका दिवार की तरफ है।) बोधि-धर्म से लोगों ने पूछा, यह क्या करते हो? तो बोधि-धर्म ने कहा कि जब ठीक आदमी आ जाएगा, जो समर्पण करने को तैयार होगा, तब मैं मुंह उस तरफ कर लूंगा, अभी व्यर्थ के लोगों की शकल देखने से फायदा भी क्या है? क्या तुम हो वह आदभी जो समर्पण करेगा? वे कहते कि अभी लड़की की शादी करनी है, अभी लड़के बच्चे बड़े हो रहे हैं, जरा व्यवस्था कर लें। पिता बूढ़े हैं, उनकी सेवा करनी है, फिर कभी आएंगे।

फिर आया, हुई-नैंग नाम का आदमी। उसने आकर कुछ कहा नहीं, उसने अपना एक हाथ काटा और बोधि-धर्म के सामने कर दिया और कहा, तत्काल इस तरफ मुंह करें, नहीं तो मैं अपनी गर्दन भी काटकर रख दूंगा। बोधि-धर्म तत्काल लौटा और बोधि-धर्म ने कहा कि तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी हुई-नैंग। तुम आ गये वक्त पर। जो मुझे कहना है, तुमसे कह दूं और अब मैं मर जाऊं। मर तो मुझे जाना चाहिए था बहुत पहले ही। वक्त मेरा बहुत पहले पूरा हो चुका है, सिर्फ उस आदमी की प्रतीक्षा में था, जिसे मैं जो जान गया हूं, वह दे दूं। क्योंकि हजारों-हजारों वर्षों में कभी कोई आदमी यह जान पाता है। अगर मैं इसे बिना बताए मर जाऊं, तो हजारों वर्ष तक अन्तराल पड़ जाएगा, इसलिए उस आदमी की प्रतीक्षा में था। और यह मैं उससे ही कह सकता हूं, जो मरने को तैयार हो, क्योंकि यह एक बहुत गहरी भीतरी मौत है।

हुई-नैंग को शिष्य की तरह स्वीकार किया—बोधि-धर्म ने, और हुई-नैंग को सारी बात कह दी, जो उसे बोधि-धर्म को कहनी थी।

क्या है वह बात? **अपने को मिटाने की तैयारी का एक मार्ग है—समर्पण** : लोग सोचते हैं कि समर्पण सरल है। लेकिन बहुत कठिन है।

दूसरा भी कोई सरल नहीं है। कोई सोचता है कि ठीक है अपने को शुद्ध कर लेंगे। चोरी नहीं करेंगे, बेईमानी नहीं करेंगे। यह न करेंगे, वह न करेंगे, शुद्ध कर लेंगे। वह भी इतना आसान नहीं है। क्योंकि चोरी बहुत गहरी है। चोरी आपका कृत्य नहीं है। आप चोर हो। हजारों-हजारों जन्मों में चोरी की है। वह चोरी का जो जहर है, वह धीरे-धीरे, धीरे-धीरे प्राणों की तलहटी तक पहुंच गया है।

झूठ छोड़ देंगे। झूठ अगर कोई वचन होता, तो छूट जाता। यह आपकी आत्मा हो गई है। ये कोई कपड़े उतार कर रख देने जैसा मामला नहीं है। चमड़ी खींचकर रख देने जैसा मामला है। इतना सब जुड़ गया है। एक आदमी कहता है, झूठ छोड़ देंगे। झूठ अगर कोई वक्तव्य होते, तो हम छोड़ देते। हम झूठ हो गये हैं— बोलते-बोलते, करते-करते— हम झूठ हो गए हैं।

हमें पता ही नहीं है कि कब हम झूठ बोल रहे हैं और कब सच बोल रहे हैं। छोड़ेंगे कैसे ? हमें यह पता भी नहीं चलता कि कब झूठ बोल रहे हैं। होश ही नहीं रहता और झूठ निकल जाता है। **झूठ, हमारी आत्मा हो गई है।**

कहते हैं, हिंसा छोड़ देंगे। इसको नहीं मारेंगे, उसको नहीं मारेंगे, लेकिन हिंसा भीतर है। छोड़ना बहुत कठिन नहीं मालूम पड़ता, लेकिन हिंसा भीतर गहरे में दबी हुई है।

कई बार बहुत मजेदार घटनायें घटती हैं। अभी मैं एक हिन्दी के लेखक **प्रभाकर माचवे** का एक लेख पढ़ता था। बहुत मजा आया। क्षमा पर लेख लिखा है उन्होंने। उदाहरण जो दिया है, वह दिया है कि चर्चिल ने महात्मा गान्धी के लिए कुछ अपशब्द कहे। अपशब्द थे कि गान्धी भी क्या है, एक नंगा फकीर। तो माचवे ने अपने लेख में लिखा है कि गान्धी जी ने चर्चिल को उत्तर दिया। **क्षमा का उदाहरण दे रहे हैं माचवे।** कि आपने आधी बात तो ठीक ही कही कि मैं एक फकीर हूं, एक गरीब मुल्क का आदमी हूं। पूरा मुल्क मेरा फकीर है और मैं उसका प्रतिनिधि हूं। इसलिए मैं फकीर हूं, लेकिन दूसरी बात आपने जरा ज्यादा कह दी। नंगा होना जरा मुश्किल है। और बाइबिल का एक वचन उधृत किया गान्धी ने अपने पत्र में। जीसस ने कहा है कि परमात्मा के सामने जो पूर्णतया नग्न है, वही नग्न है। गान्धी जी ने लिखा कि परमात्मा के सामने पूर्णतया नग्न होने की हिम्मत मेरी अभी नहीं है, लेकिन

यह आकांक्षा है, कि कभी उसके सामने परिपूर्ण नग्न हो सकूं, ताकि आपका वचन पूरा हो जाए।

प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि गान्धी जी ने ऐसा जवाब देकर चर्चिल को खूब नीचा दिखाया। क्षमा का उदाहरण दे रहे हैं। क्षमा की चर्चा कर रहे हैं, लेकिन नीचा दिखाना ! नीचा दिखाने का मजा ले रहे हैं।

पता नहीं गान्धी जी ने नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया या नहीं दिया, लेकिन माचवे को खयाल में भी नहीं आ रहा है कि **नीचा दिखाने में क्षमा कैसे हो सकती है ?** नीचा दिखाना ही तो क्रोध है। कोई आदमी गाली देकर नीचा दिखा देता है और कोई आदमी क्षमा करके नीचा दिखा देता है। **नीचा दिखाना ही तो हिंसा है।**

मुझे पता नहीं कि गान्धी जी ने नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया होगा, लेकिन जैसा माचवे कहते हैं— अगर नीचा दिखाया है, तो फिर यह क्षमा नहीं है।

हमें खयाल में नहीं आता है कि हिंसा बहुत गहरी है। और अहिंसक होने की चेष्टा में भी प्रकट हो सकती है। क्रोध बहुत गहरा है और अक्रोध में भी उसकी झलक आ जाती है।

अपने को संकल्प से बदलना भी इतना आसान नहीं है। मार्ग तो दोनों कठिन हैं। फिर भी अगर आप वह मार्ग चुन लें, जो आपके व्यक्तित्व से मेल नहीं खाता, तो असंभव हो जाएगा। कठिन नहीं, असंभव। अगर मीरा महावीर का मार्ग चुन ले, तो असम्भव है। अपने ही मार्ग पर चले, तो कठिन है सरल नहीं। अगर महावीर मीरा का मार्ग चुन लें तो असंभव है। अपने ही मार्ग पर चलें, तो कठिन है, सरल नहीं।

सरल तो कुछ भी नहीं हो सकता इसलिए नहीं कि सत्य कठिन है, बल्कि इसलिए कि लाखों-लाखों जन्मों की हमारी आदतें हैं, उनको तोड़ना कठिन है। सत्य तो सरल है। सागर में गिरते समय नदी को क्या कठिनाई है ? लेकिन नदी को आना पड़ता है हिमालय की कन्दराओं को, पहाड़ी को पार करके। पत्थरों को काटकर। वह जो मार्ग है वह कठिन है।

हम कठिन हैं। हमें अपने से ही गुजर के तो सत्य तक पहुंचना है। सत्य है सरल, हम हैं कठिन, अगर हम अपने विपरीत मार्ग चुन लें, तो यात्रा है असंभव।

● सम्पादन : *स्वामी चैतन्य भारती*

कृष्ण और गीता

भगवान श्री द्वारा 'गीता-ज्ञान-यज्ञ' के अन्तर्गत शिवाजी पार्क, बम्बई में दिनांक १९-९-'७२ को दिया गया एक उद्‌बोधन ।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, दसवां अध्याय, श्लोक ३१ एवं ३२ :

पवनः पवतामस्मि
रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि
स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥
सर्गाणामादिरन्तश्च
मध्यं चवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां
वादः प्रवदतामहम् ॥

भाष्य :

और मैं पवित्र करनेवालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम हूं तथा मछलियों में मगरमच्छ हूं और नदियों में श्रीभागीरथी गंगा हूं ॥३१॥

और हे अर्जुन ! सृष्टियों का आदि, अन्त और मध्य भी मैं ही हूं तथा मैं विद्याओं में अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या एवं परस्पर में विवाद करनेवालों में तत्त्वनिर्णय के लिये किया जानेवाला वाद हूं ॥३२॥

भगवान श्री :

पवित्र करने वालों में वायु और शस्त्रधारियों में राम हूं। इन प्रतीकों को थोड़ा हम समझें। वायु प्रकृति में सर्वाधिक स्वतन्त्र है और स्वतंत्रता ही पवित्रता है। वायु कहीं बंधी नहीं है, कहीं ठहरी नहीं है, कहीं उसका लगाव नहीं, कहीं उसकी आसक्ति नहीं, वायु एक सतत गति है। पहली बात—जहां भी लगाव होता है वहां अपवित्रता शुरू हो जाती है, जहां भी आसक्ति होगी जहां भी ठहरने का मन होगा, वहां तलाब बन जायगा। जीवन की सारी दुर्गन्ध, जीवन की सारी पवित्रता हम जहां-जहां ठहर जाते हैं वहीं से शुरू हो जाती है—जीवन जहां भी प्रवाह को खो देता है गति को खो देता है और ठहर जाता है, जड़ हो जाता है। जैसे नदी बहते-बहते पवित्र होती है और डबरा बहता नहीं अपवित्र हो जाता है। डबरे में भी वही भूमि है जो नदी में है, लेकिन नदी में प्रवाह है, बहाव है, जीवन है, डबरा मृत है मुरदा है, कहीं संगति नहीं। डबरा ठहरा है इसलिए दुर्गन्धित होता है, स्वभावतः अपवित्र हो जाता है। कृष्ण कहते हैं—पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं। पहिली बात—पवित्रता वहीं ठहरती है जहां प्रवाह सतत् हो। अपवित्रता वहीं है जहां कोई लगाव, जहां कोई रुकाव, जहां कोई ठहराव हो। पवित्रता वहीं है जहां प्राणों का अवरुद्ध होना न हो जिसके प्राण भी वायु की तरह ठहरे न हों, कहीं रुकते नहीं, कहीं बंधते नहीं, कहीं कोई आसक्ति नहीं करते, वहीं कोई पवित्रता को उपलब्ध हो पायेगा।

इसलिये अति प्राचीन समय से संन्यासी को प्रवाहगत जीवन व्यतीत करने को कहा गया है। नदी की तरह बहता रहे। महावीर ने अपने संन्यासी को कहा है कि वे तीन दिन से ज्यादा एक स्थान पर रुकें नहीं, तीन दिन के पहले हट जावें। ये तीन दिन का राज महावीर को कैसे पता चला होगा कहना मुश्किल है, लेकिन आधुनिक मनोविज्ञान कहता है कि आदमी को किसी भी जगह मन लगने को कम से कम तीन दिन से ज्यादा समय चाहिए। आप एक नये कमरे में सोने जावेंगे तो तीन रात आपको कुछ बेचैनी रहेगी। चौथी रात

दुनिया में संन्यासी भी हिन्दू होता है, मुसलमान होता है, ईसाई होता है, जैन होता है — ये कोई संन्यासी होने के लक्षण हैं ? संन्यासी को तो सिर्फ संन्यासी होना चाहिये।

आप ठीक से सो पायेंगे। कहीं भी किसी भी नई स्थिति को पुराना बनाने के लिए कम से कम तीन दिन की जरूरत है— थोड़ा ज्यादा समय भी लग सकता है।

महावीर ने अपने संन्यासी को कहा है कि वे तीन दिन से अधिक किसी जगह न रुकें इसके पहिले कि कोई अपना मालूम पड़ने लगे वहां से हट जाना चाहिए क्योंकि जहां लगा कि कोई अपना है वहीं जंजीर निर्मित हो जाती है और जिन प्राणों में जंजीर पड़ जाती है उन प्राणों में कुरूपता, दुर्गन्ध और सड़ांध शुरू हो जाती है। गड्ढा बनना शुरू हो गया। संन्यासी का अर्थ है, जो अपने को डबरा नहीं बनने देता, गृहस्थ का अर्थ है कि जो अपने को डबरा बनाने का पूरा आयोजन कर लेता है। चाहे तो गृहस्थ भी प्रवाह में जी सकता है। लेकिन उसे थोड़ी कठिनाई होगी, उसे बहुत होश रखना पड़ेगा तो ही वहां डबरा बनने से बच सकता है, अन्यथा शक्ति धीरे-धीरे जम जायेगी और उसके भीतर वह भी जम जायेगा, लेकिन हम तो कोशिश यही करते हैं कि जितना जल्दी जम जायें उतना ही अच्छा है, जमने में सुरक्षा है, सुविधा है 'कन्वीनिएंस' है। न जमने में असुरक्षा है, रोज नये के सामने पड़ना पड़ता है, रोज नई बुद्धि की जरूरत पड़ती है। हम सब जमना चाहते हैं। जमे हुए आदमी का पुरानी बुद्धि से ही काम चल जाता है। नये की कोई आवश्यकता नहीं है, हम सब नये से भयभीत होते हैं। कुछ भी नया हो तो चिंता हो जाती है, क्योंकि पुराने के साथ कैसा व्यवहार करना ये हम जानते हैं। नये के साथ फिर से व्यवहार सीखना पड़ता है। पुराना तो मृत वहीं का वहीं खो जाता है।

पुराने के साथ हम ऐसा व्यवहार करते हैं जैसा कोई मशीन का आदमी कर रहा हो। इसलिए उसे बुद्धिमत्ता की, चेतना की, द्वेष की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती। हम सब करते चले जाते हैं। आप जब अपने घर वापिस आते हैं तो आपको सोचना नहीं पड़ता— बायें मुड़ें, दायें मुड़ें— आप मुड़ते चले जाते हैं। ये काम शरीर ही कर लेता है। इसके लिए कोई होश की जरूरत नहीं होती है। शराबी भी शराब पीकर अपने घर लौट आता है, कितना भी नशे में हो दरवाजा खटखटाने लगता है।

जिसके लिये मन साफ है उसके लिये कोई सोच-विचार की जरूरत नहीं इसलिए जितना हम जान जाते हैं, उतना सोच विचार से छुटकारा हो जाता है, विचार बड़ा कष्टपूर्ण है इसलिए दुनिया में कोई आदमी विचार नहीं करना चाहता, विचार से बचना चाहता है, इसी वजह हमारा प्रवाह समाप्त हो जाता है।

कृष्ण कहते हैं कि पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं। वायु का काम है कि वह ठहरती नहीं, आई नहीं कि गई, आ भी नहीं पाई कि वह जा चुकी, आना भी न हो पाया कि जाना हो गया। वायु कहीं भी मेहमान नहीं बनती, स्पर्श करती है और हट जाती है।

संन्यासी वायु की तरह होना चाहिए, रुके न, जरूरी नहीं कि वह मकान बदले, मकान बदलने में कुछ भी नहीं होता, मकान बदलकर भी रुकना हो सकता है। अब एक आदमी रोज मकान बदल लेता है, लेकिन रोज अपने को नहीं बदलेगा तो वहीं जड़ हो जावेगा। एक संन्यासी घर छोड़ देता है लेकिन उस घर में जो भी सीखा था उसे साथ लेकर चलता है। मजे की घटना घटती है दुनिया में कि संन्यासी भी हिन्दू होता है, मुसलमान होता है, ईसाई होता है, जैन होता है। ये कोई संन्यासी होने के लक्षण हैं ? संन्यासी को तो सिर्फ संन्यासी होना चाहिए। हिन्दू होने का अर्थ है कि जहां वह बंधा है, जहां वह बंधा हुआ था, जहां पाला गया था, जहां बड़ा हुआ, जहां शिक्षा दी गई। जैन होने का मतलब है कि उस घर से अभी बन्धन है, जहां धर्म दिमाग में डाला गया था, जहां ये विचार डाले गये थे वहां से अभी लगाव है। घर छोड़ दिया परन्तु घर की जो आत्मा थी वो अभी पीछा कर रही है—घर का जो स्रोत है वह पीछा कर रहा है। वो पीछा करेगा। संन्यासी तो वो है जिसका न कोई घर है न कोई धर्म है। संन्यासी वो है जिसका कोई भी नहीं। वह यह भी नहीं कहता कि ईसा मेरे हैं, बुद्ध मेरे हैं, कृष्ण मेरे हैं। या तो सभी उसका है या सब कोई भी उसका नहीं। इन दो के अलावा उसके लिये कोई उपाय ही नहीं, फिर तो वह वायु की तरह हो जावेगा। वायु का पहिला लक्षण है कि हवा कहीं रुकती नहीं।

दूसरा लक्षण है वायु का कि दिखाई नहीं पड़ती कि है वह ? ये और भी गहरी बात है। वायु है, अनुभव होतो है, दिखाई नहीं पड़ती, स्पर्श होती है, प्रतिध्वनि होती है, पकड़ में नहीं आती, इसलिए बांधना मुश्किल है, रोकना मुश्किल है, परतन्त्र करना मुश्किल है।

कृष्ण कहते हैं— पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं। वायु की भांति, जितना पवित्र करेगी उतना ट्रान्सफारमेटरी हो जायेगी। जितनी पवित्रता होगी उतना आरपार दिखाई पड़ने लगेगा। अगर आपने पवित्र कांच देखा हो, बिलकुल शुद्ध, तो कांच भी दिखाई नहीं पड़ेगा, आर-पार सब दिखाई पड़ेगा, बीच में कोई बाधा न होगी। वायु की पवित्रता उसकी पारदर्शिता भी है।

एक बहुत पुरानी लोकोक्ति है कि जो व्यक्ति परम पवित्र हो जाता है उसकी छाया नहीं बनती। ये सब इसी बात के लिये इशारा है। छाया तो बनती है—महावीर की भी, ईसा की भी, कृष्ण की भी, लेकिन प्राचीन कहावत कहती है कि जो परम पवित्र हो जाता है उसकी छाया नहीं बनती। वह सिर्फ इस बात की सूचना देना है कि वो इतना पवित्र हो जाता है कि जिसके भीतर अशुद्धता न रह गई हो तो उसके आर-पार दिखाई पड़ने लगेगा और जिसके आर-पार दिखाई पड़ने लगता है, उसकी छाया नहीं बनेगी—ये इसका प्रतीक है। महावीर के आर-पार दिखाई पड़ता है, महावीर एक दरवाजे की भांति हैं, खुला हुआ। हम एक दीवाल की भांति हैं हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, दूसरे को दिखाई पड़ना तो बहुत मुश्किल है, हम खुद एक ठोस दीवाल हैं पत्थर की जिसमें अपने को भी खोजना हो तो बहुत मुश्किल है, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। यह उसी मात्रा में दीवाल बिखरती चली जाती है जिस मात्रा में मन पवित्र होता है और जिस दिन मन वायु की तरह हो जाता है कोई भी अपवित्रता नहीं रह जाती, ट्रान्सपेरेंट हो जाता है, आर-पार दिखाई पड़ने लगता है। वायु का होना और दिखाई न पड़ना, संत भी ऐसा ही है। होता है पर दिखाई नहीं पड़ती।

सुना है मैंने एक मुसलमान फकीर के जीवन में कहा गया है कि फकीर परमज्ञान को उपलब्ध हो गया तो देवताओं ने उस फकीर से कहा कि परमात्मा ने हमें भेजा है, तुम एक जो चाहो वरदान मांग लो, तुम पर प्रभु प्रसन्न हैं। उस फकीर ने कहा—लेकिन अब तो कोई चाह न रही, देर करके तुम आये, जब चाह रही बहुत तब तुम आए नहीं पूछने और अब जब चाह नहीं तब तुम आये हो। उन देवताओं ने कहा हम आये ही इसीलिए हैं। जब चाह नहीं रह जाती तभी तुम इतने पवित्र होते हो कि पूछा जा सके कि क्या चाहते। चाह के कारण ही हमारे और तुम्हारे बीच दरवाजा बंद था। जब चाह गिरी तब दरवाजा खुला और हम पूछने आये कि कुछ मांग लो।

उस फकीर ने कहा कि अब मैं क्या मांग सकता हूं। लेकिन जितना फकीर जिद करने लगा कि मैं कुछ नहीं मांग सकता उतना वे संत जिद करने लगे कि कुछ मांग लो। जिन्दगी ऐसी ही उलटी है। जो लोग जिद करते हैं कि चाहिए उतना ही पीछे चले जाते हैं। जो दौड़ते हैं पाने को वे खो देते हैं, और जो पाने का खयाल ही छोड़ देते हैं उनके पीछे सब दौड़ने लगता है। उन देवताओं ने चरण पकड़ लिए और कहा कि परमात्मा उनसे कहेगा कि तुम

इतना भी नहीं समझा सके, तुम कुछ तो मांग ही लो। उस फकीर ने कहा कि तुम्हारी ही मर्जी है देने की तो जो चाहो दे जाओ। तो उन देवताओं ने कहा कि हम तुम्हें वरदान देते हैं कि तुम जिसे भी छू दोगे वो बीमार होगा तो स्वस्थ हो जावेगा, मुर्दा होगा तो जीवित हो जावेगा। अगर सूखे पौधे को छुओगे तो उसमें अंकुर निकल आवेंगे। उस फकीर ने कहा— इतनी तुमने कृपा की, एक कृपा और करो और वह कृपा यह कि मेरे छूने से नहीं मेरी छाया के छूने से हो, मैं जहां चला जाऊं और मेरी छाया पड़ जाय उन सूखे पौधों पर लेकिन उसका पता मुझे न चले। और अगर मेरे छूने से होगा तो मेरा अहंकार पुनः निर्मित हो सकता है। मुझे पता नहीं चले ; नहीं तो तुम्हारा वरदान मेरे लिए अभिशाप हो जावेगा। मुझे पता न चले मेरी शक्ति का, मेरे संतत्व का मुझे पता न चले, मेरे रहस्य का मुझे पता न चले, ये जो चमत्कार प्रभु मुझे दे रहा है इसका पता मुझे न चले। तो वह फकीर जहां चलता गांव में, सूखे पेड़ पर छाया पड़ जाती वह हरे हो जाते, कभी किसी बीमार पर उसकी छाया पड़ जाती वह स्वस्थ हो जाता, लेकिन न तो उस फकीर को पता चलता न उस बीमार को ही पता चलता कि ये छाया के पड़ने से ये घटना हुई।

तो ये तो कहानी है लेकिन सूफी फकीर कहते हैं कि कभी कोई सन्त पैदा होता है तो न तो उसे खुद पता होता है कि मैं सन्त हूं और न किसी और को पता चलता कि वे संत हैं।

पता न चलना, वायु की तरह होना है। जिन्हें हमने भगवान भी कहा, बुद्ध को, महावीर को उन्हें खुद भी पता नहीं, बच्चों की भांति, हवा की तरह पवित्र, सेल्फ-कांसेस, अनकांसेस नहीं, अचेतन नहीं, अहंकार का जरा भी बोध नहीं, अहंकार की चेतनता जरा भी नहीं। और दिखाई नहीं पड़ना, तो जो चीज दिखाई पड़ती है वह पदार्थ बन जाती हैं। दिखाई पड़ना पदार्थ का गुण है, मैटर का गुण है। चैतन्य का गुण है दिखाई पड़ना नहीं, होना। इसलिए शरीर दिखाई पड़ते हैं, आत्मा दिखाई नहीं पड़ती। हमें पत्थर दिखाई पड़ते है, प्रेम दिखाई नहीं पड़ता। जो भी हमें दिखाई पड़ता है वह पदार्थ है। जो भी हमें दिखाई नहीं पड़ता वह परमात्मा है। वायु हमें दिखाई नहीं पड़ती और अगर हमें सिद्ध करना हो कि वायु है तो उसके लिये हम इन आंखों का उपयोग न कर सकेंगे और अगर कोई जिद ही करें तो हम कठिनाई में पड़ जायेंगे। यद्यपि जो हमसे कह रहा है कि वायु को प्रत्यक्ष करो वह वायु के बिना जीवित नहीं रह सकता। एक श्वास भी

आना बन्द हो जावेगी तो प्राण निकल जावेंगे। वायु ही उसका प्राण है, जीवन है लेकिन फिर भी वायु को सामने रखा नहीं जा सकता, प्रत्यक्ष नहीं रखा जा सकता, पर हम अनुभव कर सकते हैं। लेकिन किसी को लकवा लग गया हो जिसे स्पर्श का भी कोई बोध न होता हो तो हवाएं बहेंगी उसे पता न चलेगा। वो श्वास लेगा, उसी में जियेगा और उसे पता न चलेगा। कहते हैं कि मछलियों को सागर का पता नहीं चलता, नहीं चलता होगा, क्योंकि सागर में ही पैदा होती हैं सागर में ही बड़ी होती हैं, सागर में ही समाप्त हो जाती हैं। नहीं चलता होगा पता क्योंकि वह इतना निकट है और सदा निकट है कि उसका पता चलना बन्द हो जाता है। वायु निकट है सदा घेरे हुए यही हमारा सागर है जिसमें हम जीते हैं लेकिन दिखाई नहीं पड़ती। परमात्मा भी ठीक ऐसा ही है जिसका हमें पता नहीं चलता। चारों तरफ घेरे हुए है उसके बिना हम क्षण भर भी जी नहीं सकते, वायु के बिना तो हम थोड़े जी भी सकते हैं पर परमात्मा के बिना हम क्षण भर भी जी नहीं सकते। वो हमसे वायु से भी ज्यादा निकट है। वह हमारे प्राणों का प्राण है लेकिन उसका ही हमें पता नहीं चलता।

कृष्ण कहते हैं कि पवित्र करने वालों में मैं वायु हूं और शस्त्र-धारियों में मैं राम हूं। ये बहुत प्यारा प्रतीक है। राम के हाथ में शस्त्र बहुत 'कन्ट्राडिक्ट्री' है। उनके हाथ में शस्त्र होने नहीं चाहिये। राम का चित्र आप ख्याल करें, राम के शरीर का थोड़ा ख्याल करें, राम की आंखों का थोड़ा ख्याल करें, राम के व्यक्तित्व का ख्याल करें—शस्त्रों से कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता। राम और शस्त्रों के साथ यह बड़ी उल्टी बात मालूम पड़ती है। न तो राम में क्रोध है, न तो राम के मन में प्रतिस्पर्धा है, न राम के मन में ईर्ष्या है, न राम किसी को दुख पहुंचाना चाहते हैं, न किसी को पीड़ा देना चाहते। फिर उनके हाथ में शस्त्र कैसे ? उनके हाथ में कमल का फूल होता तो समझ में आता। उनके हाथ में शस्त्र बिलकुल समझ में नहीं आते। मैं जब राम का चित्र देखता हूं और कंधे पर लटका हुआ धनुष देखता हूं और कंधे पर बंधे तीर देखता हूं तो राम के शरीर से उनका कोई सम्बन्ध नहीं मालूम पड़ता। राम का शरीर एक कवि का काव्य है। एक काव्य की प्रतिमा मालूम होती है। राम की आंख प्रेम की आंख मालूम होती है। राम पैर भी रखते हैं तो ऐसा रखते हैं कि किसी को ठेस न लग जाय। राम का सारा व्यक्तित्व फूल जैसा है और कंधे पर बंधे तीर और ये धनुष

बाण — ये कुछ समझ नहीं आते, इनका कोई काम नहीं, इनकी कोई संगति नहीं।

राक्षस के हाथ में, रावण के हाथ में शस्त्र सार्थक मालूम होते हैं, संगत मालूम होते हैं, बाण, धनुष ठीक बैठता है। महावीर के हाथ में तीर का न होना, तलवार का न होना संगत मालूम पड़ता है, गणित वहां भी ठीक मालूम होता है। महावीर हों या बुद्ध हों उनके हाथ में कुछ भी नहीं है, कोई शस्त्र नहीं है।

राम के हाथ में शस्त्र हैं। सारा शरीर शस्त्रों से ढका है, यह भी ठीक है। राम कुछ अनूठे हैं। ये आदमी बुद्ध जैसे और इनके हाथ में शस्त्र रावण जैसे—ये बड़ा विरोधाभासी है और कृष्ण को यही प्रतीक ठीक मिलता है कि शस्त्रधारियों में मैं राम हूं। बहुत शस्त्रधारी हैं, शस्त्रधारियों की कोई कमी नहीं है। राम को क्यों चुना होगा ? जानकर चुना है, बहुत विचारकर चुना है। इसे थोड़ा समझें, ये थोड़ा बारीक है, ये बात थोड़ी कठिन मालूम पड़ेगी। शस्त्र खतरनाक हैं रावण के हाथ में, रावण के भीतर सिवाय हिंसा के कुछ भी नहीं है, और हिंसा के हाथ में शस्त्र का होना—जैसे कोई आग में पेट्रोल डालता हो। ये अनुपातजन्य है, ये हमारी समझ में आ जावेगा। इस दुनिया की पीड़ा भी यही है कि गलत लोगों के हाथ में ताकत है। गलत आदमी उत्सुक भी होता है शक्ति पाने के लिये बहुत। बर्ट्रेन्ड रसल ने कहा, "पावर करप्ट एंड करप्ट एब्सोल्यूटली"। लेकिन बर्ट्रेंड रसल ने जो उसका कारण दिया है वो ठीक नहीं है। बर्ट्रेंड रसल सोचता है कि जिनके हाथ में भी शक्ति आ जाती है शक्ति के कारण वो करप्ट होगा—ये बात गलत है। ये करप्ट हो जाते हैं ये सत्य है, लेकिन शक्ति के कारण करप्ट हो जाते हैं ये गलत है, क्योंकि हमने राम के हाथ में भी शक्ति देखी और करप्शन नहीं देखा, व्यभिचार नहीं देखा, शक्ति का कोई व्यभिचार नहीं देखा।

गलत आदमी उत्सुक भी होता है शक्ति पाने के लिए बहुत। शक्ति लोगों को व्यभिचारी बना देती है और पूर्ण रूप से व्यभिचारी बना देती है। वर्ट्रेंड रसल की ये बात ठीक है लेकिन बर्ट्रेंड रसल ने जो कारण दिया वह ठीक नहीं है। वर्ट्रेंड रसल सोचता है कि जिनके हाथ में शक्ति आती है, शक्ति के कारण वे करप्ट हो जाते हैं, ये बात गलत है। वे करप्ट हो जाते हैं ये ठीक है, लेकिन शक्ति के कारण हो जाते है—ये गलत है। हमने राम के हाथ में भी

शक्ति देखी पर करप्शन नहीं देखा, व्यभिचार नहीं देखा—शक्ति का कोई व्यभिचार नहीं देखा। तो बात कुछ और है।

शक्ति, ठीक है, हम देखते हैं कि जिनके हाथ में शक्ति आती है, वे व्यभिचारी हो जाते हैं, लेकिन इसका कारण शक्ति है— ऐसा नहीं। इसका बुनियादी कारण है कि व्यभिचारी ही शक्ति के प्रति आकर्षित होते हैं, कमजोर आदमी अपने व्यभिचार को प्रकट नहीं कर पाता, जब हाथ में आती है शक्ति तो प्रकट कर पाता है। शक्ति के साथ व्यभिचार पैदा नहीं होता, प्रकट होता है। आप कमजोर हैं, आपके भीतर हिंसा है, दूसरा आदमी मजबूत है तो आप हिंसा नहीं कर पाते। यदि बन्दूक आपके हाथ में दे दी जाय तो दूसरा आदमी कमजोर हो गया, आप ताकतवर हो गये ये हिंसा होगी। चरित्र की असली परीक्षा तभी होती है जब शक्ति पास में हो। जिनके पास शक्ति नहीं उनके चरित्र का कोई भरोसा नहीं। उनका कन्वर्शन कमजोरी हो सकती है। इसलिए दुनिया में जितने चरित्रवान दिखाई पड़ते हैं ९९ प्रतिशत लोग कमजोरी के कारण चरित्रवान होते हैं। इसलिये इतने चरित्रवान लोग दिखलाई पड़ते हैं, इसीलिए चरित्र की बात रखी और दुनिया रोज कहती है कि इनसे हिंसा नहीं की जा सकती। कमजोर आदमी को ताकत दो तो उसका चरित्र बह जावेगा, सबसे पहिली जो दुर्घटना होगी वो चरित्र की हत्या हो जावेगी। कमजोर आदमी को किसी तरह की ताकत दो, धन दो, पद दो, राजनीति की कोई सत्ता दो, सारा चरित्र बह जावेगा। हम इसे भली भांति जानते हैं, जिनको आजादी के पहले चरित्रवान समझा था आजादी के बाद एक रात में उनके चरित्र बह गये। जो सेवक की तरह बिलकुल भोले-भाले मालूम पड़ते थे, वे सत्ताधिकारी की तरह किंग वा तैमूर के वशज सिद्ध होते हैं— क्या हो गया था रात भर में— क्या शक्ति लोगों को भ्रष्ट कर गई—नहीं, केवल कमजोरी की वजह से लोग चरित्रवान थे। हाथ में ताकत आती है और सब चरित्र खो जाता है। परीक्षा शक्ति आने के बाद ही होती है।

निश्चित ही शक्ति पाने को कमजोर लोग ही उत्सुक होते हैं। होते ही हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिनके भीतर "इनफीरियरटी काम्प्लेक्स" है, जिनके भीतर हीनता की भावना है वे ही लोग पदों की तरफ आकर्षित होते हैं। इसलिए इन्फ्रीयारिटी काम्प्लेक्स के लोगों को देखना हो तो किसी भी देश की राजधानी में मिल जावेंगे। सब वहां मिल जावेंगे इकट्ठे। जिनके भी मन में भय है कि मैं तुच्छ हूं, मैं कुछ भी नहीं हूं— वे किसी पद पर बैठ-

कर अपने आपको दूसरों के सामने सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं कुछ हूं। 'नो बडी वान्ट्स टु बी नो बडी', कोई भी नहीं कहता कि मैं कोई भी नहीं हूं। कोई भी पसन्द नहीं करता कि मैं कुछ भी नहीं हूं। हर एक के भीतर खयाल है कि मैं कुछ हूं। कुछ हूं, लेकिन मैं किससे कहूं, कैसे कहूं, जब तक कि हाथ में ताकत न हो तब तक। हाथ में ताकत हो तो मैं कहूं कि कुछ हूं।

वे ही लोग ताकत की दौड़ से बच सकते हैं जो बिना कहे, भीतर हीनता की ग्रन्थि से मुक्त हो जाते हैं। जिनके भीतर हीन होने का भाव ही नहीं रहता, वे ही लोग दूसरों से श्रेष्ठ होने की कोशिश नहीं करते। हीन लोग श्रेष्ठ होने की कोशिश करते हैं। राम के हाथ में शस्त्र। श्रेष्ठ आदमी के हाथ में शस्त्र। श्रेष्ठ इसलिए कह रहा हूं कि रावण के हाथ में शस्त्र हैं तो ठीक आदमी के हाथ में हैं। रावण की आत्मा और शस्त्रों के बीच सेतु है, संबंध है, एक हारमनी है, एक संगति है। राम और शस्त्र के बीच कोई सम्बन्ध नहीं, बल्कि खाई, अनन्त खाई (अन-बेलैन्स गैप) वही राम की खूबी है। रावण के हाथ में ठीक मालूम होते हैं शस्त्र, पर खतरनाक हैं, क्योंकि जब भीतर हिंसा हो और शस्त्र हाथ में हों तो हिन्सा गुणित होते चली जायेगी, 'मल्टीप्लाई' होती चली जायगी।

पिछले युद्ध में फ्रान्स पर जब हमला हुआ तो फ्रांस की एक पहाडी पूरी तरह नष्ट हो गई। और युद्ध के बाद जब उसमें खुदाई की जा रही थी, तो एक बहुत हैरानी की घटना घटी। उस पहाड़ी की खुदाई करते वक्त आधुनिक युग के बमों के खोल एक गुफा में उपलब्ध हुए, जो पत्थरों में छिप गये थे और वहीं २५ हजार वर्ष पुराने पत्थरों के औजार भी मिले। ये दोनों एक साथ उपलब्ध हुए। २५ हजार साल पुराने पत्थर के औजार और आधुनिक युग के बम के खोल—ये दोनों एक साथ एक ही गुफा में उपलब्ध हुए। **२५ हजार साल पहले आदमी पत्थर से मार रहा था, आदमी वहीं था। २५ हजार साल बाद आदमी बमों से मार रहा है, आदमी वही है। विकास आदमी का जरा भी नहीं हुआ, लेकिन पत्थर के औजार से एटम बम तक विकास हो गया, आदमी वही है।**

इसलिए लोग कहते हैं कि मनुष्यता विकसित हो रही है ये जरा संदिग्ध है। अस्त्र-शस्त्र विकसित हो रहे हैं, यह असंदिग्ध बात है। मनुष्यता विकसित होती दिखाई नहीं पड़ती। 'एवल्यूशन' वस्तुओं का हो रहा है। २५ हजार साल पहले जिस आदमी ने किसी की हत्या पत्थर से की होगी, अब २५ हजार

साल बाद उसने बम से हत्या की, उसके हत्या करने का पैमाना बड़ा हो गया। पत्थर से आप एकाध को मार सकते थे, बम से आप एक साथ एक लाख लोगों को मार सकते हैं। हाइड्रोजन बम कोई एक करोड़ आदमी एक साथ मार सकता है, और अभी जमीन पर कोई ५० हजार हाइड्रोजन बम तैयार हैं। वैज्ञानिक कहते हैं, तैयारी जरूरत से ज्यादा हो गई, वे कहते हैं कि अब जितने बम हैं उतने आदमी नहीं हैं मारने को। एक आदमी को अगर सात-सात बार मारना पड़े तो हमारे पास इन्तजाम है, हालांकि एक आदमी एक बार में ही मर जाता है, लेकिन राजनैतिक बहुत हिसाब लगाते हैं, कोई अगर बच जाए तो दुबारा, तिबारा ... ... क्या हम सात बार मार सकते हैं। एक दिन में ३० अरब आदमियों को मारने का इन्तजाम है, जबकि आबादी तीन-साढ़े तीन अरब है। ३० अरब आदमियों को मारने का रोज इंतजाम है और ये इंतजाम रोज बढ़ता जाता है। आदमी विकसित हुआ मालूम नहीं पड़ता, लेकिन ताकत विकसित हुई मालूम पड़ती है।

हिन्सा हो भीतर, वैमनस्य हो भीतर, प्रतिस्पर्धा हो भीतर, शत्रुता हो भीतर तो अस्त्र-शस्त्र घातक हैं, ये तो हमारी समझ में आ जावेगा। एक तरफ रावण है जिसमें शस्त्र का मेल, ये खतरनाक है।

दूसरी तरफ बुद्ध और महावीर, ये भी गणित के फार्मूले की तरह साफ हैं। जैसे ये आदमी हैं वैसा ही उनके पास सब कुछ है। इनके पास कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं हैं। भीतर प्रेम है, हाथ में तलवार नहीं, ये आदमी अपने लिए खतरनाक नहीं किसी के लिए भी खतरनाक नहीं। लेकिन नकारात्मक रूप से समाज के लिए ये भी खतरनाक हैं। नकारात्मक रूप से, क्योंकि उसका मतलब ही यही है कि बुरे आदमी के हाथ में ताकत रहेगी और अच्छा आदमी ताकत को छोड़ता चला जावेगा, यह जाने-अनजाने बुरे आदमी को मजबूत करना है। महावीर की कोई इच्छा नहीं, बुद्ध की कोई इच्छा नहीं कि बुरे आदमी मजबूत हो जायं, **लेकिन महावीर का शस्त्र छोड़ देना, बुद्ध का शस्त्र छोड़ देना, बुरे आदमी को मजबूत करने का कारण बनेगा ही। अच्छा आदमी मैदान छोड़ देगा, बुरा आदमी ताकतवर हो जावेगा।** दुनिया में जितनी बुराई है उसमें सिर्फ बुरे लोगों का हाथ होता तो भी ठीक था, पर उसमें अच्छे लोगों का हाथ भी है। ये जो मैं कह रहा हूं उसे थोड़ा समझने में कठिनाई मालूम होगी, क्योंकि अच्छे आदमी का सीधा हाथ नहीं है बुराई में, अच्छे आदमी का हाथ परोक्ष — इनडायरेक्ट है। अच्छा आदमी छोड़ के चल देता है, अच्छा

आदमी लड़ाई के मैदान से हट जाता है। अच्छा आदमी जहाँ भी संघर्ष हो, वहां से हट जाता है, वहां से दूर हो जाता है, तो बुरे आदमी ही शेष रह जाते हैं और बुरे आदमी ताकत तक पहुंच जाते हैं और वो पूरे समाज के बुरे होने का कारण बनते हैं।

इसलिए कृष्ण राम को चुन रहे हैं, ये बहुत सोचकर कही गई बात है। राम दोहरे हैं— आदमी बुद्ध जैसे और शक्ति रावण जैसी। शायद दुनिया अच्छी न हो सकेगी जब तक कि अच्छे और बुरे आदमी की ताकत के बीच ऐसा कोई सम्बन्ध स्थापित न हो। अच्छे आदमी सदा 'पैसिव' होते हैं, शांतिवादी होते हैं। बुरे आदमी सदा हमलावर होंगे, लड़ने को तैयार होंगे। अच्छे आदमी मंदिरों में पूजा करते रहेंगे, बुरे आदमी ताकत में आ जावेंगे। अच्छे आदमी कोने में खड़े रहेंगे, बुरे आदमी सारी दुनिया को रोंद डालेंगे। थोड़ा हम सोचें कि राम जैसा व्यक्तित्व पृथ्वी पर खोजना मुश्किल है। एक अनूठा आयाम है राम का, एक अलग ही 'डायमेन्सन' है। क्राइस्ट, बुद्ध समाज में खोजे जा सकते हैं, सिकन्दर सरीखे भी खोजे जा सकते हैं। राम अनूठा जोड़ हैं—व्यक्ति बुद्ध जैसे और हाथ में ताकत रावण जैसी। कृष्ण कहते हैं कि शस्त्रधारियों में मैं राम हूं। ***बुराई में भी सब बुराई नहीं है और भलाई में भी सब भलाई नहीं है।*** बुराई में भी ताकत तो बुरी है और भलाई में भी ताकत की कमी बुरी है। भले को भी शक्तिशाली होना चाहिए। इस जगत में बुराई कम होगी तभी जब भला आदमी शक्तिशाली होगा, तभी होगी कम जब भला आदमी शक्ति को निर्मित करेगा। भला आदमी रास्ते से हट जावे तो वो बुरे आदमी को बुरा होने की सुविधा दे रहा है, मार्ग दे रहा है, वह साथी और संगी बन रहा है, बिना जाने, बिना समझे, बिना इच्छा के।

इसलिए राम के प्रतीक को कृष्ण लेते हैं, कृष्ण कहते हैं कि मैं शस्त्रधारियों में राम हूं। मैं भला हूं बुद्ध जैसा पर मैं बुरा भी हो सकता हूं रावण जैसा। बुरा हो सकता हूं—इसका मतलब यह कि बुरे के साथ ठीक उसके तल पर युद्ध ले सकता हूं। ठीक उसके ही स्थान पर, उससे जीत सकता हूं। ठीक उसके ही उपकरणों का उपयोग कर सकता हूं। लेकिन एक बात गौर करने जैसी है कि राम जैसा व्यक्ति ही रावण के शस्त्रों का उपयोग कर सकता है। कोई दूसरा यदि उपयोग करे तो कोई जीते, कोई हारे रावण ही जीतेगा। यदि कोई व्यक्ति रावण से लड़ने जाय और रावण के ही शस्त्रों का उपयोग करे तो चाहे कोई जीते, कोई हारे, रावण ही जीतेगा। युद्ध में धीरे-धीरे दूसरा

व्यक्ति रावण जैसा ही हो जावेगा। रावण की असली पराजय यही है कि रावण राम को अपने जैसा नहीं बना पाया—असली पराजय उसकी यही है कि राम राम ही बने रहे। उनके व्यक्तित्व में जरा भी कमी नहीं आई, कली भी नहीं सूखी, उसका फूल फूल जैसा ही खिला रहा। उनकी तलवार उनके हाथ में रही पर शस्त्र उनके भीतर की मनुष्यता में जरा भी फर्क नहीं ला पाये। वहीं रावण की हार है, वहीं रावण पराजित हो गया। अगर राम भी रावण जैसे हो जाते और जीत भी लेते तो कोई फर्क नहीं पड़ता।

हमने दूसरे महायुद्ध में देखा। दूसरे महायुद्ध में जो लोग हिटलर से लड़े थे, वे युद्ध के मैदान में हिटलर जैसे बनकर भी एक कदम आगे चले गये। हिटलर तो झिझकता-सा रहा उन शस्त्रों को बनाने, निर्माण करने व उनका उपयोग करने में; लेकिन अमेरिका न रुका। और इसलिए जो सोचा था कि हिटलर की हार के बाद दुनिया में शांति आ जावेगी वह बिलकुल नहीं आई। दुनिया में युद्ध का सिलसिला वैसा ही जारी रहा और जो कल के मित्र थे— जो युद्ध में हिटलर को हराने के लिए दोस्ती किये हुए थे— वे हिटलर की हार के बाद दुश्मन की तरह खड़े हो गए। हिटलर हारा जरूर पर सारी दुनिया में वह छाया की तरह भर गया। उसकी हार वास्तविक नहीं हुई। हिटलर हारा जरूर पर सारी दुनिया सचेत कर गया। एक-एक आदमी के कान में सोशलिज्म का जाल डाल गया, इसलिए हिटलर किसी दिन जिन्दा भी हो सकता है, इसमें कोई अड़चन नहीं। एक-एक प्राण में वह मौजूद है। उसका बीज कहीं से भी प्रकट हो सकता है। हिटलर की हार हो नहीं सकी, क्योंकि जो लोग उससे लड़े वे लोग भी उसके व्यक्तित्व की दृष्टि से उससे भिन्न नहीं थे।

रावण हारा, लेकिन जिसके हाथों हारा वह व्यक्तित्व रावण के तल का न था, इसलिए रावण प्रसन्न है कि राम के हाथ से उसकी मृत्यु घटित हुई। यह अनूठी बात है। राम के हाथों से उसकी मृत्यु। रावण प्रसन्न है। मुक्ति में क्या बाधा रही होगी, अगर राम मुझे मारने आए हों, और इस शरीर से मुझे विदा करते हों तो मेरी मुक्ति, मेरे मोक्ष में बाधा ही क्या है। राम को शत्रुता नहीं है, विरोध है, संघर्ष है; लेकिन राम की लाचारी का रावण को बोध है। राम की भिन्नता का भी रावण को पता है।

कृष्ण कहते हैं कि मैं शस्त्रधारियों में राम हूं। मैं शस्त्र भी ले सकता हूं, लेकिन मैं उससे नहीं बदलता। शस्त्र मुझे नहीं बदल सकता, ये उनका

प्रयोजन है। मैं कुछ भी कहूं मेरा कर्म मेरी आत्मा को नहीं बदल सकता, यह उनका अभिप्राय है।

ध्यान रहे, हम जो भी करते हैं उसका जोड़ ही हमारी आत्मा है। राम जो भी करते हैं उसका जोड़ उनकी आत्मा नहीं है। राम जो करते हैं-वो उस तल पर है और उनकी आत्मा दूसरे तल पर है। राम के कृत्यों से केवल राम का पता नहीं चल सकता। राम की आत्मा का पता हो, तो हम राम के कृत्यों को समझ सकते हैं। हमारे कृत्यों से हमारी आत्मा का पता चल जाता है और हमारे पास कोई दूसरी आत्मा नहीं है। आपने जो-जो किया है, वह यदि अलग कर लिया जाय, तो आप बिलकुल शून्य हो जावेंगे। राम ने जो भी किया है, उसे अलग कर लिया जाय, राम में कोई फर्क नहीं पड़ता। राम का करना हम ठीक से समझें, तो बिलकुल बाहरी घटना है, भीतर कुछ भी नहीं घटता है इसलिए अनोखी घटना राम के जीवन में है, जिसे समझना लोगों को मुश्किल पड़ा है।

राम सीता के चोरी जाने से रावण से लड़ने गये, तो स्वभावतः हमें लगेगा कि सीता से भारी आसक्ति रही होगी। राम को भारी आसक्ति, भारी लगाव रहा होगा तब तो युद्ध में वो इतनी झंझट में उतरे और जब तक सीता को वापिस न ले आये तब तक हमें लगता है कि दिन रात सो न सके होंगे, बेचैन रहे होंगे, परेशान रहे होंगे। लेकिन दूसरी घटना बड़ी मुश्किल में डाल देती है। एक धोबी की जरा-सी चर्चा, वह भी दूसरे के द्वारा सुनी गई कि एक धोबी का अपनी पत्नी से ये कह देना कि मैं कोई वो राम नहीं हूं कि तुम महिनों और सालों घर से बाहर रही आओ और मैं तुम्हें वापिस रख लूं। वह एक मामूली घटना कि उसकी पत्नी एक रात बाहर रह गई होगी। 'मैं कोई राम नहीं हूं' ये खबर राम को लग गई और सीता को जंगल में छुड़वा देना, ये जरा असंगत मालूम पड़ता है। राम सीता के लिये इतना बड़ा युद्ध नहीं लेंगे। उन्होंने अपने प्राण सीता के लिए लगा दिए, तो राम बड़े विचित्र लगते हैं। वर्षों शक्ति और श्रम व्यय किया सीता के लिये और एक धोबी के कहने से सीता को उन्होंने जंगल में छुडवा दिया। राम को कृत्यों से नहीं समझ सकते। राम क्या करते हैं इससे उनकी आत्मा का पता नहीं चलेगा, नहीं तो इन दोनों बातों मे मेल बैठाना मुश्किल है। राम क्या हैं यह समझें, तो कृत्यों को समझा जा सकता है।

सीता का चोरी जाना युद्ध का कारण नहीं है, केवल युद्ध का बहाना है। सीता के लिये युद्ध नहीं किया गया। ज्यादा समझ की बात तो ये है कि शायद युद्ध के लिये सीता को चोरी करवाने की व्यवस्था की गई हो। समझ में तो ऐसा ही आता है। क्योंकि राम एक सोने के मृग के पीछे भागते हैं—शिकार करने। आप भी धोखे में न आते, हालांकि सोना बड़ा आकर्षित करता है। लेकिन यदि सोने का मृग आपको भी दिखाई देता तो समझ जाते कि ये धोखा है। **राम को तो सोने का मृग क्या धोखा दे सकता था! ये जाना आयोजित है, ये जाना जान-बूझकर है, ये जाना समझ-बूझ कर है। सीता चुराई जा सके इसके लिये सुविधा देना जरूरी है। वह जो गलत है, वह गलत कर सके, तभी उसकी गलती प्रगट होगी, जो बुरा है उसे बुरा होने का पूरा मौका दिया जाय तो ही उसकी बुराई प्रगट हो सकती है।**

रावण सीता को चुराकर झंझट में पड़ गया। उसकी बुराई उसके घर पर पहुंच गई। उसके पाप का घड़ा पूरा भर गया। तब उसे दुरुस्त किया जा सकता है। एक खयाल शायद आपको न हो, लेकिन भारत का मन बड़ा अनूठा है और कई बार उसके लिये कहना मुश्किल हो जाता है। कहते हैं कि बालमीकि ने रामायण पहले लिखी, राम बाद में हुए। ये बात बड़ी असंगत मालूम होती है, लेकिन भारत की मनीषा और खयाल बड़े अनूठे हैं। राम का व्यक्तित्व एक विराट योजना का हिस्सा मात्र है। योजना पहिले से नियोजित है। राम सिर्फ एक अभिनेता मात्र हैं। उसमें सीता चोरी जाती है तो युद्ध को चले जाते हैं और एक धोबी एतराज दिखाता है तो सीता को जंगल में भिजवा देते हैं। राम दो, तीन किन्हीं कृत्यों के बीच में नहीं हैं, बाहर खड़े हैं। जैसे कि वे सारे कृत्य किसी मंच पर किये जा रहे हैं, उससे राम को कुछ लेना-देना नहीं है। जो करना जरूरी है, वह कर रहे हैं। जो होना चाहिये, वो हो रहा है। लेकिन वे बाहर खड़े हैं। उनकी आत्मा किसी से भी छू नहीं जाती—कहीं स्पर्श नहीं कर रही है।

कृष्ण का यह कहना कि 'मैं धनुष-शस्त्रधारियों में राम हूं', इस बात की खबर देना है कि **जो मैं करता हूं उससे मेरा कोई पता नहीं लगा सकेगा। मेरा होना मेरे कृत्यों के पार है। वो जो अस्तित्व है मेरा, वो मेरे कृत्यों से बहुत ऊपर है।** हमारी हालत उलटी है। हमारा अस्तित्व हमारे कृत्यों से भी नीचे होता है। इसे हम समझ लें, तो राम की बात हमारे खयाल में आ जाय।

रास्ते में आप जाते हैं, और एक भिखारी आपसे पैसा मांगता है। अगर आपके पास कोई न हो तो भिखारी की आप बिना फिक्र किये आगे बढ़ जाते हैं। और यदि चार लोग देखने वाले हों और प्रतिष्ठा का सवाल हो जाय, तो आप भिखारी को दो पैसे दे देते हैं। वो आप भिखारी को नहीं देते, वो आप अपनी प्रतिष्ठा को देते हैं। इसलिये भिखारी भी अकेले आदमी को नहीं घेरते। दो चार मित्र हों तो पैर पकड़ लेते हैं, क्योंकि परिचितों के साथ ही वो पैसा मिलने वाला है। परिचितों के सामने ये भी तो अपमानजनक है कि भिखारी को दो पैसा नहीं दे सके। अब आपका कृत्य तो मालूम होता है कि आपने दया की, पर आपका अस्तित्व आपके कृत्यों से नीचे होता है। आपकी आत्मा आपके कृत्यों से भी नीचे होती है। राम वो नहीं हैं। **जहां अहंकार तृप्त हुआ, वहां दान नहीं, अहंकार के लिये कुछ भी दिया जाय दान नहीं।**

जब आप दो पैसे देते हैं भिखारी को, तो उसका सम्बन्ध भिखारी से नहीं अपने दो पैसे से है, जो दान दे रहे हैं, ताकि अहंकार और मजबूत हो जाये। भिखारी का पात्र तो आपके लिये केवल एक निमित्त है। भिखारी को दो पैसे मिल जाते हैं। भिखारी को कितने पैसे मिलते हैं इससे उसको भी प्रयोजन नहीं। लोगों को दिखता है कि आपने दया की। हालाकि किसी भिखारी को ऐसा नहीं लगता और आप जब दे के चले जाते हैं, तो भिखारी भी हंसता है कि कैसा बेवकूफ बनाया। उसका भी अपना अहंकार है; आपका ही नहीं। वो भी भली-भांति जानता है कि किस तरह से लोग बुद्धू बन जाते हैं, किस हालत में बन जाते हैं। वह भी पीछे से हंसता है, सामने से दुआ देता मालूम पड़ता है। मानता तो वो उसी आदमी को है, जो बिना दिये अकड़कर चला जाता है। वो समझता है कि इसे वो बना नहीं पाया।

हमारा कृत्य ही हमारी आत्मा के ऊपर मालूम पड़ता है। आप किसी को नमस्कार करते हैं और कहते हैं, मिलकर बड़ी खुशी हुई, पर आपको कोई खुशी नहीं होती, बल्कि दुख ही होता है कि ये शक्ल कहां से सुबह-सुबह दिखाई पड़ गई। आपका कृत्य आपकी आत्मा से बड़ा मालूम होता है। आप जो कहते हैं, आप जो कहते हैं, वही काफी ऊंचा है। **राम ठीक इसके विपरीत हैं। वो जो कर रहे हैं वह बहुत नीचे है और वो जो हैं वह बहुत ऊंचा है।** कृष्ण कहते हैं वो जो मैं कर रहा हूं उससे मुझे मत तौलना। मैं शस्त्रधारियों में राम जैसा हूं।

मगरों में मगरमच्छ और नदियों में गंगा हूं। और हे अर्जन ! सृष्टियों का आदि, अन्त और मध्य भी मैं ही हूं।

गंगा का प्रतीक समझने जैसा है। गंगा के साथ हिन्दू-भाव बड़े गहरे में उतरा है। गंगा को यदि हम भारत से हटा दें तो भारत को भारत कहना मुश्किल हो जाय। सब जानते हैं, गंगा हट जाय तो भारत को भारत कहना मुश्किल हो जाय। गंगा को यदि हटा लें तो सारा साहित्य अधूरा पड़ जाय। गंगा को हम हटा लें तो भारत के सारे ऋषि-मुनि खो जायें। गंगा को हटा लें तो हमारे सारे तीर्थ खो जायें, हमारी तीर्थ की भावना खो जाय। गंगा के साथ भारत के प्राण बड़े पुराने दिनों से कमिटेड हैं, बड़े गहरे में जुड़े हैं। गंगा जैसे हमारी आत्मा का प्रतीक है। मूर्ति की यदि कोई आत्मा होती है और उसके प्रतीक होते हों, तो गंगा ही हमारा प्रतीक है। और क्या कारण होगा गंगा का इस गहरे प्रतीक बन जाने का ? हजारों-हजारों वर्ष पहिले कृष्ण भी कहते हैं कि नदियों में मैं गंगा हूं। गंगा, कोई नदियों में विशेष कुछ इस अर्थ में नहीं है। गगा से बड़ी नदियां पृथ्वी पर हैं। गंगा से लम्बी नदियां हैं। गंगा से बड़ी नदियां पृथ्वी पर हैं। गंगा कोई लम्बाई में, विशालता में, चौड़ाई में, किसी भी दृष्टि में कोई बहुत बड़ी नदी नहीं है। ब्रह्मपुत्रा है, अमेजान है और भी बड़ी नदियां हैं, जिनके सामने गंगा बिलकुल फीकी पड़ जाय। पर गंगा के साथ कुछ और है, जो पृथ्वी की किसी नदी के साथ नहीं है। और उस और के कारण भारतीय मन ने गंगा के साथ एक ताल-मेल बना लिया है। इसमें बहुत मजे की बात है कि पूरी पृथ्वी पर गंगा से बढ़कर जीवंत नदी, एलाइव्ह नदी कोई भी नहीं है।

सारी नदियों का जल आप बोतल में रख दें, तो उनका पानी सड़ जायगा, गंगा भर का न सड़ेगा। गंगा बहुत विचित्र है। उसका पानी गतिरोध में सड़ता नहीं। वर्षों रखा रहे, वह अपनी बन्द बोतल में भी स्वच्छता, पवित्रता कायम रखता है। और किसी नदी का पानी पृथ्वी पर इतना पवित्र नहीं है। सभी नदियों का पानी इस अर्थ में कमजोर है। गंगा का पानी इस अर्थ में कुछ विशेष मालूम होता है। इसका विशेष केमिकल गुण मालूम पड़ता है। गंगा में हम इतनी लाशें फेंकते हैं। गंगा में हमने हजारों-हजारों वर्षों से लाशें बहाईं। अकेले गंगा के पानी में सब कुछ विलीन हो जाता है—हड्डी भी। वैसी किसी नदी में क्षमता नहीं है। हड्डी भी पिघलकर लोन हो जाती है और बह जाती

है और गंगा को अपवित्र नहीं कर पाती। गंगा सभी को पवित्र कर देती है। और दूसरी नदी में हम लाश को रखें तो पानी सड़ेगा। पानी कमजोर है और लाश मजबूत पड़ती है। गंगा में हम लाश डालते हैं, लाश ही बिखर जाती है, मिल जाती है अपने तत्वों में। गंगा अछूती बहती रहती है उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

गंगा के पानी की बड़ी परीक्षाएं हुई हैं 'केमीकली' और अब तो वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो गया है कि इसका पानी असाधारण है। ये क्यों है असाधारण ? यह भी थोड़ी हैरानी की बात है, क्योंकि गंगा जहां से निकलती है वहां से बहुत नदियां निकलती हैं। गंगा जिन पहाड़ों से गुजरती है वहां से कई नदियां गुजरती हैं। तो गंगा में जो खनिज आदि तत्व मिलते हैं, वे और नदियों में भी मिलते हैं। फिर गंगा में सिर्फ गंगा का पानी ही तो नहीं होता। गंगोत्री से तो एक छोटी-सी धारा निकलती है फिर और भी सब दूसरी नदियों का पानी गंगा में आता है। विराटधारा तो दूसरी नदियों के पानी की ही होती है, लेकिन बड़े मजे की बात है कि जो नदी गंगा में नहीं मिली उसके पानी का गुण-धर्म और होता है और गंगा में मिल जाने के बाद उसी पानी का गुण-धर्म और होता है। क्या होगा कारण ? केमीकली तो कुछ पता नहीं चल पाता। वैज्ञानिकरूप से ये तो पता चलता है कि विशेषता है। और इसके पानी में केमीकल्स और केमीकल्स का भेद है। वैज्ञानिक इसे कभी कह भी सकता है, लेकिन एक और भेद है और वो भेद विज्ञान के खयाल में आज नहीं तो कल आना शुरू हो जावेगा। **और वह भेद है—गंगा के पास लाखों-लाखों लोगों का जीवन की परम अवस्था को पाना।**

ये मैं आपसे कहना चाहूंगा कि जब भी कोई पवित्र व्यक्ति पानी के पास बैठता है, अन्दर जाने की तो बात ही अलग है, पानी के पास भी बैठता है तो पानी प्रभावित होता है। पानी उस व्यक्ति की तरंगों से आच्छादित हो जाता है और पानी उस व्यक्ति की तरंगों को अपने में ले लेता है। इसलिए दुनिया के बहुत से धर्मों ने पानी का उपयोग किया है।

ईसा पूर्व सन् ००३२ में 'बेप्टिस्म' के लिए पानी का उपयोग किया गया। जीसस को जिस व्यक्ति ने 'बेप्टिस्म' दिया— जान-बप्तिस्म ने— उस व्यक्ति का नाम पड़ गया था जान-बत्तीसवांवाला। वो जार्डन नदी में (और जोर्डन यहूदियों के लिए वैसी ही नदी है जैसी हिन्दुओं के लिए गंगा) गले तक आदमी को डुबा देता फिर वह खुद भी पानी में डूबकर खड़ा हो जाता, फिर

उसके सिर पर हाथ रखता और प्रभु से प्रार्थना करता उसके 'बप्तिस्म' की, उसकी दीक्षा की। पानी में क्यों खड़ा होता था जान और पानी में दूसरे व्यक्ति को खड़ा करके क्या कुछ करता था। पानी में एक व्यक्ति की तरंगें, एक व्यक्ति का प्रभाव और एक व्यक्ति की आंतरिक दशा का आंदोलन दूसरे व्यक्ति तक पहुंचाना आसान है। आसान है। पानी बहुत शीघ्रता से चार्ज्ड हो जाता है। पानी बहुत शीघ्रता से व्यक्ति से अनुप्राणित हो जाता है। पानी पर छाप बन जाती है।

लाखों-लाखों वर्षों से भारत के ऋषि-मुनि गंगा किनारे बैठकर प्रभु को पाने की चेष्टा करते रहे हैं और जब भी कोई एक व्यक्ति ने प्रभु को पाया है, तो गंगा उस उपलब्धि से वंचित नहीं रही है। गंगा भी आच्छादित हो गई है। गंगा का किनारा, गंगा की रेत के कण-कण गंगा का सब इन लाखों वर्षों में एक विशेष रूप से 'स्प्रिचुअली चार्ज्ड आफ', तरंगायत आध्यात्मिक रूप से हो गया है। इसलिये गंगा के किनारे हमने तीर्थ बनाये। इसलिए लोग गंगा की यात्रा करते हैं। इसलिए लोग सोचते हैं कि गंगा में जाकर पाप धुल जावेंगे। ये पाप गंगा की वजह से नही धुल सकते, लेकिन गंगा के पास जो वातावरण है, वो जो लाखों-लाखों वर्षों का छाया है उस छाया में जरूर यदि आप अगर अपने हृदय के द्वार खोलें, तो आप दूसरे आदमी होकर वापिस लौट सकते हैं।

गंगा एक आध्यात्मिक यात्रा भी है, एक नदी ही नहीं है। और इस तरह के बहुत से प्रयोग हुए हैं। जैनों के २० तार्थंकर पार्श्वनाथ पर्वत पर निर्वाण को उपलब्ध हुए। एक ही पर्वत पर २० तीर्थंकर निर्वाण को उपलब्ध हुए २४ तीर्थंकरों में से। यह आकस्मिक नहीं मालूम होता, क्योंकि २० तीर्थंकर—२४ मे से प्रत्येक तीर्थंकर के बीच हजारों साल का फासला है। ये हजारों साल में २० तीर्थंकर अपने मरने के क्षण में एक छोटी-सी पहाड़ी पर पहुंच गये। ये पूर्व नियोजित है, आयोजित है उस पूरे पहाड़ को 'चार्ज्ड' करने की चेष्टा उन जैन तीर्थंकरों ने की। वो पूरा पहाड़— जब एक तीर्थंकर अपने शरीर को छोड़ता है, तो ये घटना उस घटना से बड़ी है जब एक अणु का विस्फोट होता है। लेकिन ये घटना पता चल गई, पर वो दूसरी घटना हमें पता नहीं है। वैज्ञानिक अब कहते हैं कि एक आणविक विस्फोट से इतनी ऊर्जा पैदा होती है कि उससे सारी पृथ्वी आग से भर जाय। हीरोशिमा में जो आणविक विस्फोट हुआ उसमें १ लाख २० हजार आदमी ५ सेकंड में राख हो गये। अणु आख से दिखाई नहीं पड़ता इतनी छोटी चीज है। और अणु के

विस्फोट का मतलब क्या है ? अणु के विस्फोट का मतलब है, तीन कणों—प्रोटोन, इलेक्ट्रोन और न्यूट्रोन—जिनसे मिलकर वह बनता है, उन तीनों को अलग कर दिया जाय तो जिस शक्ति के द्वारा वे जुड़े थे वह बाहर निकलती है, रिलीज होती है। तीनों के बीच की वही शक्ति १ लाख २० हजार व्यक्तियों को राख कर देती है। एक छोटा-सा अणु जो आंख से दिखाई भी नहीं पड़ता उससे अगर हम अणु को समझना चाहें, तो अगर १ लाख अणु एक ऊपर एक रखे जावें तो आपके बाल के बराबर मोटाई के होंगे। इतना छोटा-सा अणु एक लाख बीस हजार आदमियों को राख कर देता है—विस्फोट से। और एक तीर्थंकर की आत्मा जब उसके शरीर से छूटती है, तो जो शक्ति आत्मा को और शरीर को बांधे हुए थी वह 'रिलीज' होती है। करोड़ों-करोड़ों वर्षों से ये शरीर से आत्मा बंधी रही है और अब पहली दफा आत्मा सदा के लिए शरीर को छोड़ रही है। शरीर और इसको बांधने वाली जो शक्ति थी, वो छूटेगी, वही शक्ति उस पहाड़ पर जाकर बिखर जायेगी। २० तीर्थंकर जाकर उस पहाड़ को इलेक्ट्रीफाइड कर दें, वह 'मेगनेटिक' हो जाय। फिर लाखों हजारों वर्ष लोग उस पहाड़ की तीर्थयात्रा करते रहे, इस आशा में कि वह मेगनेटिज्म, वह चुम्बक उनके प्राणों को भी छू ले और स्पर्श कर दे। जैसा जैनों ने प्रयोग किया है पार्श्वनाथ हिल्स पर ठीक वैसा ही प्रयोग हिन्दुओं ने गंगा के किनारे किया है।

अरब में एक गांव है— कुशा। उस गांव में अब तक मुसलमान के अतिरिक्त कोई भी प्रवेश नहीं पा सका सिर्फ एक आदमी को छोड़कर। पूरे इतिहास में १४०० साल के, मुसलमान के अतिरिक्त उस गांव में प्रवेश नहीं हो सकता—साधारण मुसलमान भी प्रवेश नहीं पा सकता। असाधारण रूप से वस्तुतः जो मुसलमान हो सच में — जिसका हृदय रूपांतरित हुआ हो और परमात्मा के लिए समर्पित हो गया हो और जिसने जाना हो कि एक ही अल्लाह हैं वही प्रवेश पा सकता है। सिर्फ एक आदमी को छोड़कर, एक अंग्रेज "खोजी बर्टन" उसमें प्रवेश पा सका है— गैर-मुसलमान। लेकिन उसको भी गैर-मुसलमान कहना ठीक नहीं। २० साल उसने मुसलमान साधना की—सिर्फ उस गांव में प्रवेश पाने के लिए और जब वह बिलकुल मुसलमान हो गया, नाम मात्र को ही "बर्टन" रह गया, चमड़ी भर अंग्रेज की रह गई और सब जगह से वो मुसलमान हो गया तब उसे प्रवेश मिला। मुसलमानों ने प्रयोग किया उस गांव को चार्ज्ड करने के लिए इन। १४००वर्षों में उन्होंने एक अनूठी छोटी

सी जगह निर्मित की है उसमें प्रवेश पाते ही कोई आदमी रूपान्तरित हो जाय ऐसी व्यवस्था की है। उसमें वे ही लोग प्रवेश पा सकते हैं जो बहुत ही गहरी प्रार्थना में उतर गए हैं। वह सारा वातावरण उससे प्रभावित होता है। कण-कण उनके प्रभाव को पी लेता है, आत्मसात कर लेता है।

कृष्ण कहते हैं मैं नदियों में गंगा हूं। गंगा साधारण नदी नहीं है। एक आध्यात्मिक यात्रा और एक आध्यात्मिक प्रयोग— लाखों वर्षों तक, लाखों लोगों का उसमें मुक्ति को पाना—परमात्मा के दर्शन को उपलब्ध होना—आत्म साक्षात्कार को पाना—लाखों लोगों का उसके किनारे आकर अनुपम घटना को उपलब्ध होना। ये सारे लोग अपनी जीवन ऊर्जा को गंगा के पानी पर उसके किनारे पर छोड़ गए। इसलिए कृष्ण कहते हैं कि मैं नदियों में गंगा हूं।

और हे अर्जुन! सृष्टियों का आदि और अन्त मैं ही हूं तथा विद्याओं में अध्यात्म विद्या और परस्पर विवाद करने वालों में तत्व निर्णय के लिए किया जाने वाला 'वाद'— तर्क मैं ही हूं। न्याय मैं ही हूं। ये दो बातें बहु-मूल्य हैं।

विद्याओं में अध्यात्म विद्या। अनेक विद्याएं हैं, लेकिन अध्यात्म विद्या गुणात्मकरूप से भिन्न है। अगर कोई फिजिक्स का जानकार हो जाये, कोई केमेस्ट्री का जानकार हो जाये, कोई गणित का जानकार हो जाये, कोई गणित जान ले, ज्योतिष जान ले, कोई संगीत जान ले— हजार विद्यायें हैं। कोई किसी भी विद्या में कितना ही पारंगत हो जाए, स्वयं तो अंधेरे में ही खड़ा रहता है। कितना ही बड़ा संगीतज्ञ हो और कितना ही संगीत सीख ले, परन्तु खुद के स्वरों से अपरिचित होता है। खुद स्वरों को साध ले, खुद की आत्मा अनसधी रह जाती है। चाहे सारे साज बजा ले एक भीतर की वीणा सूनी ही पड़ी रहती है। कोई कितना ही बड़ा गणितज्ञ हो और कितनी ही बड़ी संख्याओं को गिन ले, अनेक संख्याओं का हिसाब उसके मन में सरलता से हल होने लगे, लेकिन एक संख्या स्वयं की वो अनगिनी रह जाती है।

सुना होगा आपने दस व्यक्तियों ने एक बार नदी पार की। बाढ़ आई हुई थी। पार तो वे कर गये, फिर उन्हें खयाल आया कि कोई बह न गया हो तो उनने गिनती की। लेकिन कठिनाई रही होगी, जो सभी आदमियों के साथ में होती है, क्योंकि गिनती दूसरों की की, और हर गिनने वाला अपने को छोड़ देता था। गिनता था एक से नौ तक। और जब सभी ने गिनकर देख लिया

और सभी ने पाया कि संख्या नौ होती है तो निर्णय हो गया कि एक आदमी खो गया।

हम सब निर्णय इसी तरह के लेते हैं। गणितज्ञों के निर्णय इसी तरह के होते हैं। जब दस आदमी सभी कह रहे हैं कि नौ हैं तब कोई उपाय न रहा। वे सिर पीटकर रोने लगे कि उनका साथी कोई खो गया। तब पास से कोई गुजरा और उसने पूछा कि क्या कारण है तुम्हारे इस तरह रोने का, तो उन्होंने कहा कि हम दस निकले थे, हमारा एक साथी खो गया। उस आदमी ने आंख डाली, आदमी दस थे। तो उसने कहा कि देखें, तुम्हारी गिनती करने में कोई भूल तो नहीं है। उसने गिनती करके बताई तो वो समझ गया कि भूल है। भूल वही है जो सभी आदमियों की भूल है। हर एक अपने को गिनना छोड़ जाता है। उस आदमी ने कहा कि मैं एक तरकीब का उपयोग करता हूं जिससे दसवां आदमी मौजूद हो जावेगा। उसने कहा कि मैं हर एक आदमी को चांटा मारूंगा जोर से। जब मैं एक को चांटा मारूं तो वो बोले – एक। जब मैं दूसरे को चांटा मारूं तो वो बोले––दो। जब मैं तीसरे को चांटा मारूं तो वो बोले—तीन। और ऐसे मैं दसवें को मौजूद कर दूंगा। उसने दसों को चांटे मारे, उनकी व्यर्थ की पिटाई हुई, लेकिन दसों आनंदित भी बहुत हुए। और दसों माफी मांगने लगे और धन्यवाद देने लगे कि आपकी बड़ी कृपा हुई कि आपने दसवां आदमी मौजूद कर दिया।

समस्त साधनाएं आपको चांटा मारने से ज्यादा नहीं हैं जिसमें आपको एक का—उस एक का बोध हो जाय और कुछ नहीं है। और समस्त गुरु आपको सिर्फ चांटा मारने के कुछ और नहीं करते कि जिससे किसी तरह जो आपके भीतर खो गया है आदमी, वो आपके खयाल में आ जाए। वो वहीं मौजूद है, वो कहीं खो नहीं गया। वो वहीं उपस्थित है। लेकिन हर एक अपने को गिनना भूल जाता है। सारी विद्याएं दूसरों को गिनने की हैं, स्वयं को छोड़कर। सब विद्याएं दूसरों को जानती हैं स्वयं को छोड़कर, इसलिए सभी विद्याओं के भीतर गुह्य विद्या छिपी रहती है। इसलिये एक आदमी वेद का पारंगत विद्वान हो जाता है, लेकिन स्वयं के मामले में वैसा ही मूढ़ होता है जैसा कि कोई और मूढ़। एक आदमी बड़ा वैज्ञानिक हो जाता है, वो ठीक है। यहां तक हाल है कि एक आदमी बड़ा मनोवैज्ञानिक हो जाता है, बड़ा 'साइकोलाजिस्ट' हो जाता है, मन के सम्बन्ध में सब कुछ जान लेता है, लेकिन खुद के मन के सम्बन्ध में वैसा ही दीन और कमजोर होता है, जैसा कोई और।

खुद फ्रायड, जिसने पूरा जीवन यौन और यौन-सम्बन्धी सारी बीमारियों का अध्ययन किया, उसने लिखा है कि ५० साल की उम्र में भी एक दिन अचानक रात को रास्ते से गुजरती हुई स्त्री को देखकर धक्का देने का मन हो गया। यह आदमी ईमानदार है। हमारे मुल्क का कोई आदमी होता तो ऐसा कभी बताता नहीं। और उसने लिखा कि हैरानी की बात है कि ५० साल की उम्र में भी रास्ते पर दिखी एक स्त्री को धक्का लगाने का मन मेरा हुआ। अगर आप फ्रायड से पूछो तो क्रोध के सम्बन्ध में वह सब जानता था, लेकिन उसे यदि गाली दे दो तो वह इतना क्रोधित हो जाता था कि कोई पागल हो। यह मजे की बात है कि मनोवैज्ञानिक भी जान सकते हैं दूसरों के बाबत, अपने संबंध में उसका कुछ लेना-देना नहीं है। स्वयं आदमी अपरिचित रह जाता है अपने से।

अध्यात्म विद्या ऐसी विद्या है जिससे हम स्वयं को जानते हैं। और कल ये भी हो सकता है कि एक अध्यात्म-ज्ञानी कुछ भी और न जानता हो। रामकृष्ण दूसरी क्लास तक पढ़े थे। शास्त्र ठीक से पढ़ नहीं सकते थे। बातें भी जो करते थे वह ग्रामीण की, लेकिन वे उस विद्या को जानते थे, जिससे कि कृष्ण अपना तादात्म्य कर रहे हैं। कबीर जुलाहे, नानक पढ़े लिखे नहीं। मोहम्मद को 'क-ख-ग-घ' भी नहीं आता था। दस्तखत भी मोहम्मद नहीं कर सकते, लेकिन कृष्ण कह रहे हैं कि विद्याओं में मैं अध्यात्म विद्या हूं। क्योंकि मान्यता ये है कि जिसने सब जान लिया और स्वयं को न जाना उसके जानने का उपयोग क्या; और जिसने कुछ भी न जाना और स्वयं को जान लिया। क्योंकि अन्ततः जीवन का जो परम उद्देश्य है, वो स्वयं को जानने से घटित होगा और अन्ततः जो मृत्यु के पार जाने वाला अमृत-सूत्र है, वो स्वयं को जानने से घटित होगा। और अन्ततः सब जाना हुआ जो हमारा पराया है, वो पड़ा रह जायगा। जो मेरे साथ जा सकेगा वो मेरा स्वयं का बोध है। **मृत्यु के पार जिसे न ले जाया जा सके उसे हम ज्ञान नहीं मानते। हम ज्ञान उसे मानते हैं कि लपटों में जब शरीर भी जल जाय तब भी मेरा ज्ञान न जले। आग भी मेरे ज्ञान को न जला सके, मृत्यु भी मेरे ज्ञान को नष्ट न कर सके, तभी वह ज्ञान है अन्यथा उस ज्ञान का कोई मूल्य नहीं।**

तो वह हम सब जान लें, वह जानना जरूरी है, वह उपयोगी हो सकता है; पर अन्ततः उसका कोई मूल्य नहीं। इसलिये हम बड़े से बड़े पंडित को भी, जो बहुत जानता है, मरते वक्त उसे वैसा ही दीन हो जाते हम

देखते हैं, जैसा कोई भी मर रहा हो। मृत्यु बता देती है कि आपने कुछ जाना कि नहीं जाना। मृत्यु खबर दे देती है।

हिन्दुस्थान से जब सिकन्दर वापिस लौटता था तो उसके गुरु अरस्तु ने उससे कहा था कि हिन्दुस्थान से संन्यासी को लेते आना, आते वक्त। अरस्तु बहुत ज्ञानी था—ज्ञानी पंडित के अर्थ में, बहुत जानता था। सच तो यह है कि पश्चिम में जितने विज्ञान विकसित हुए हैं, सबका पिता अरस्तु है—सबका। जितना विज्ञान विकसित हुआ, सबकी आधार शिलाएं अरस्तु रख गया। एक अकेले आदमी ने कभी इतने विज्ञानों को जन्म नहीं दिया, इसलिये ये अरस्तु अद्‌भुत है। लेकिन उसने भी सिकन्दर को कहा था कि जब तुम आओ हिन्दुस्थान से, तो बहुत कुछ लूटकर लाओगे, एक संन्यासी भी लेते आना। मैं संन्यायी को देखना चाहता हूं। मैं उस आदमी को देखना चाहता हूं जिसने स्वयं को जान लिया।

ये अरस्तु इतना बड़ा ज्ञानी था—पश्चिम का, तर्क का पिता। पश्चिम का जो तर्क, 'लाजिक' है, वह अरस्तु से पैदा हुआ और अब भी वही काम आता है, २००० साल हो गये। क्योंकि सिकन्दर तो सम्राट था, हालांकि अरस्तु उसका गुरु था, लेकिन इस तरह की कहानियां हैं कि सिकंदर शिष्य था, पर कभी-कभी अरस्तु को कहता था कि तुम घोड़ा बनो और मैं तुम पर सवार होकर जरा चलूं और उसको घोड़ा बनाकर सिकन्दर उसे चलाता था। इतना ज्ञानी था, लेकिन स्वयं का तो कोई ज्ञान नहीं था, तो हालत उसकी ये थी सिकन्दर की गुलामी की वजह से। सिकन्दर ने सोचा कि जब अरस्तु जैसे आदमी को मैं घोड़ा बनाकर चला सकता हूं, तो एक क्या दस-पचास संन्यासी पकड़वा लाऊंगा।

जब वह हिन्दुस्थान से लौटा तो उसे खयाल आया। जिस गांव में वह ठहरा उसमें उसने आदमी भेजे कि कोई संन्यासी हो तो पकड़ लाओ। गांव के लोगों से सिपाहियों ने पूछा तो गांव के लोगों ने कहा— जो संन्यासी तुम्हारी पकड़ में आ जाय तो समझना कि वह ले जाने योग्य नहीं है। तो वे बड़ी मुश्किल में पड़े। उन्होंने पूछा कि फिर कौन है ले जाने योग्य। उन्होंने कहा कि एक आदमी है, पर उसे एक सिकन्दर क्या हजार सिकन्दर भी उसे ले जा सकेंगे—यह बहुत मुश्किल है। उन्होंने कहा उसी का पता बता दो। उन्होंने कहा नदी के किनारे एक संन्यासी है उसे तुम ले जाओ। सिपाही गये। उन्होंने कहा कि महान् सिकन्दर की आज्ञा है कि आप हमारे साथ

चलें। शाही सम्मान के साथ हम तुम्हें यूनान ले जावेंगे; जो भी आप चाहेंगे आपकी सेवा होगी, हम सब करेंगे। आप शाही अतिथि होंगे। शाही महल में आप ठहरेंगे। सिकन्दर के विशेष मेहमान होंगे। वह संन्यासी-फकीर हंसने लगा और उसने कहा, आज्ञा ! आज्ञा तो हमने किसी की भी मानना बन्द कर दी, उसी दिन से तो हम संन्यासी हुए। जब तक हम किसी न किसी की आज्ञा मानते थे तब तक हम गृहस्थ थे। सिकन्दर से कह दो कि तुम गलत आदमी के पास आ गये। उन्होंने कहा कि आपको पता नहीं सिकन्दर खतरनाक है, वह क्रोधी है, वह गर्दन काट दे सकता है। तो उस संन्यासी ने कहा कि तुम सिकन्दर को भी बुला लाओ। उस सिपाही ने कहा, बड़ा मजा आयेगा। सिकन्दर ने सुना तो सिकन्दर नंगी तलवार लेकर गया।

सिकन्दर की भारत की यात्रा में यह सबसे बड़ी घटना है। वह नंगी तलवार लेकर गया और उसने संन्यासी से कहा कि मैं आदमी कठोर हूं। इसी क्षण मैं जबाब चाहता हूं। साथ चलते हो, ठीक है, नहीं तो ये गर्दन काट देता हूं। उस फकीर ने कहा कि तुम काट ही दो। जहां तक मेरा इस गर्दन से सवाल है, मैं उसे छोड़ चुका जिस दिन मैंने संन्यास लिया। मेरी तरफ से ये कटी हुई है और तुमसे मैं कहता हूं कि जब गर्दन कटकर गिरेगी तब तुम भी देखोगे कि गर्दन गिर रही है और मैं भी देखूंगा कि गर्दन गिर रही है, क्योंकि मैं इस गर्दन से अलग हूं। तुम देर मत करो, बेकार समय मत गंवाओ। मैं भी आदमी साफ-सुथरा हूं। तलवार बाहर निकालो, गर्दन काटो, तुम अपने काम पर जाओ—तुम अपनी यात्रा पर जाओ, मैं अपनी यात्रा पर। सिकन्दर ने तलवार वापिस रख ली और उसने अपने सिपाहियों से कहा कि इस आदमी को अब मारने का कोई अर्थ नहीं है। हम केवल उसी को मार सकते हैं जो मृत्यु से डरता हो, मारा ही उसी को जा सकता है, मरता भी वही है जो मृत्यु से डरता है। इस आदमी को मारने का कोई अर्थ नहीं है। मारने में हमें ही पछताना होगा। पीछे हमीं चिन्ता में पड़ जावेंगे। यह आदमी चिन्ता में पड़ने वाला नहीं। यह मेरी ही नींद हराम कर देगा। इसकी गर्दन मुझे ही बार-बार याद आती रहेगी। मेरी ही रास्ते की यात्रा खराब हो जावेगी।

ब्रह्मविद्या या अध्यात्म विद्या का अर्थ है—वो विद्या, वो सुप्रीम साइन्स जिससे हम उसे जान लेते हैं वो जो हम हैं। जिससे हम उसे जान लेते हैं जोसब जान रहा है। जिससे हम उसे जान लेते हैं जिसकी कोई मृत्यु नहीं—जिसका कोई जन्म नहीं।

स्वेतकेतु लौटा भारत अध्ययन करके समस्त शास्त्रों का, जो भी जानने योग्य था वो जान आया। वह स्थिति आई कि जानने की अकड़ आ गई। वह आया, उसने भीतर प्रवेश किया। उसके पिता ने देखा मकान में स्वेतकेतु चला आ रहा है अकड़कर—पंडितों की तरह अकड़कर। आया तो पिता ने कहा कि मालूम होता है कि जानकर आ गया है, सब कुछ। स्वेतकेतु ने कहा, "सब जानकर आ रहा हूं। जो भी जानने के लिए था, जितनी विद्यायें थीं, सब सीख आया हूं।" उसके पिता ने कहा कि बस एक सवाल तुझसे पूछता हूं, तूने उसे भी जाना या नहीं जिससे सब जाना जाता है। उसने कहा कि ये तो कोई विद्या मैंने सुनी नहीं। मेरे गुरु ने उसके बाबत कोई बात की नहीं। उसके पिता ने कहा कि तू वापिस लौट जा। तू उसको जानकर लौट जिसके बिना सब जानना बेकार है और जिसे जानके सब जान लिया जाता है। स्वेतकेतु वापिस लौट गया।

ब्रह्म विद्या का अर्थ है— वह विद्या जिससे हम उसे जानते हैं जो सब जानता है। गणित आप जिससे जानते हैं, फिजिक्स आप जिससे जानते हैं, केमिस्ट्री आप जिससे जानते हैं— उस तत्व को जान लेना ही ब्रह्मविद्या है। जानने वाले को जान लेना ब्रह्म विद्या है। ज्ञान के स्रोत को भी जान लेना ब्रह्म विद्या है। भीतर जहां चेतना का केन्द्र है, जहां से मैं जानता हूं आंखों को, जहां से मैं देखता हूं आंखों को, जिससे मैं देखता हूं उसे भी देख लेना, उसे भी जान लेना, पहचान लेना, उसकी प्रतिभिज्ञा, उसका पुनर्स्मरण ब्रह्मविद्या है।

कृष्ण कहते हैं मैं परम विद्या हूं—सब विद्याओं में—लेकिन यह ध्यान रखना कि वे और सब विद्याओं का निषेध नहीं करते। और विद्याओं में जो श्रेष्ठ है, उसकी सूचना भर दे रहे हैं। वे यह नहीं कह रहे हैं कि सिर्फ ब्रह्म-विद्या को ही खोजना, बाकी सब छोड़ देना। अध्यात्म विद्या परम तभी हो सकती है जब दूसरी भी साथ हों। आप केवल मंदिर का सोने का शिखर बना लें और दीवालें न हों तो समझ लेना कि शिखर जमीन में पड़ा हुआ ही रह जायेगा। मंदिर का शिखर आकाश तक उठता ही इसीलिए है कि पत्थर की दीवालें उसे सम्हालती हैं। अब तक हम कहीं भी मंदिर नहीं बना पाये, हमने शिखर बना लिया— और पश्चिम ने मंदिर बना लिया। जब तक हमारा शिखर पश्चिम के मंदिर पर न चढ़े, तब तक दुनिया में कोई भी संस्कृति पैदा नहीं हो सकती।

● संकलन एवं संपादन : *स्वामी धर्म सरस्वती*

नियति-चक्र

संभवामि युगे युगे

आने वाले कल का जब होगा विकास
और बनेगा जब 'आज' का इतिहास
नाम तुम्हारा याद रहेगा
शाद रहेगा
सबको तुम पर नाज रहेगा !

● *स्वामी दिनेश भारती*

(उपर्युक्त कविता की अंतिम पंक्तियां यहां ली हैं, ये कवि की पृष्ठ १७ के साथ की अंतिम पक्तियां हैं।)

जिनका होना ही विराट
अस्तित्व में आनंद और
नृत्य की लीला है।

ऐसे विराट भगवत्
स्वरूप श्री रजनीश
के चरणों में
शत शत वंदन

समाज पेपर मार्ट

१६४, रानीपुरा मेन रोड, इन्दौर–१

DB / JAN.73-1

▶ कवर २ से आगे

जैसे 'अर्जुन' के लिए था
जैसे 'आनन्द' के लिए था
जैसे 'मीरा' के लिए था
मगर आने वाली दुनिया...बेचारी दुनिया...हमें कोसेगी
जब पता चलेगा, कि
'उसके' भगवान के अधिकांश वचन खो गए हैं
अथवा अनछपे हैं !
और हे ईश्वर समर्पण !
हो सके तो खुलवा दो जगह-जगह रेडियो स्टेशन
और बंटवा दो जमीन के एक-एक आदमी को टेलीविजन
और झरने दो प्रभु का संगीत...
ताकि सारी दुनिया डूब जाय
आलोक में, आनन्द में, नृत्य में...
ताकि कल यह न कहे कोई
कि भगवान प्रगट होकर छुप गया
और हम अभागे रहे ! वंचित रहे !!

तीसरा पत्र भगवान रजनीश को--

'हे करुणावतार !
चलने दो तुम्हारी लीला !
बहने दो तुम्हारा प्रेम !
बजने दो निरंतर नाद !
हम और गहरे नृत्य में डूबना चाहते हैं
और गहरे ... और और गहरे ...
ताकि गल जाये हमारा अहं
हो जायें हम शून्य
और उतर आये तुम्हारी शक्ति हमारे भीतर,
ताकि हम रह सकें निष्कम्प...
कभी भी, कहीं भी, किसी भी हालत में...
यहां तक कि कोई हमारे टुकड़े-टुकड़े काटे
तो भी हमारा साक्षी-भाव न छूटे...!!
हे प्रभुओं के महाप्रभु !
शक्ति दो ! सामर्थ्य दो !! वर दो !!!

--स्वामी अगेह भारती, जेड-२१७ । सी,अपर लाइन्स, जबलपुर (म,प्र.)

जनवरी १९७३

नूतन वर्ष
की
शुभकामनाओं
सहित

O' Coming New Year

O' Loving New Year

Come and Love to all

January 1973

● मुख पृष्ठ : रामजी रायशी पोर, बंबई एवं कामता सागर, जबलपुर

● अंतिम पृष्ठ : स्वामी विजय भारती, देहली